उद्बोधन

अर्थात्

धर्मविषयिणी उपेक्षा अथच आवश्यकता की
ओर सनातन धर्मावलम्बियों का
दृष्टि-आकर्षण.

पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय
संकेत नाम हरिऔध निज़ामाबाद
निवासी प्रणीत.

स० कु० बाबू रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.
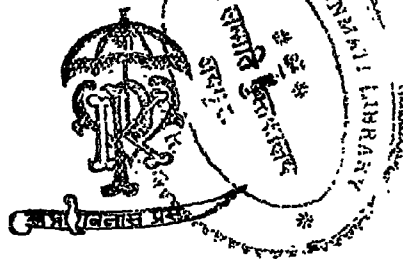
पटना "खड्गविलास" प्रेस—बाँकीपुर.
बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित.
१९०६

प्रथम वार १०००

शुद्धाशुद्धापत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	२३	कल्पित	कथित
१४	१०	दिग्मण्डल	दिङ्मण्डल
१४	११	के	की
२१	१८	और न	और
२५	५	अवृत्त	प्रवृत्त
२६	५,२३	संख्या	सँस्था
२८	२५	डेग	डग
२९	१६	संख्या	सँस्था
२९	२०	वह कलंक	यह कलंक
३०	१६	यह	वह
३२	७	कसता	सकता
३३	१९	शीतातक	शीतातंक
३३	२६	नहा	नहीं
३६	१	आगाध	अगाध
४०	२३	दिन्दू	हिन्दू

निवेदन।

सज्जनगण !

पुस्तक के स्वरूप में जो लेख आज आप लोगों के सन्मुख उपस्थित है, पहले वह एक क्षुद्र आकार में पुण्यस्थल प्रयागक्षेत्र की श्री सनातनधर्म्ममहासभा में पठित होने के लिये लिखा गया था। दैवदुर्विपाकवश कतिपय मुख्य कारणों से मैं उक्त महती सभा में उपस्थित न हो सका, अतएव वह लेख भी वहां पठित किये जाने के सौभाग्य-लाभ से वंचित रहा। पहले उस क्षुद्र लेखही को ट्रेक्ट के आकार में प्रकाशित कर देने का विचार था, परन्तु हृदय के कुछ अनिवार्य्य उच्छ्वासों ने मेरे इस विचार को बदल दिया और उन्हीं के एकान्त प्राबल्यलाभ का यह फल है कि आज उस क्षुद्र लेख को आपलोग इस बृहत् आकार में परिणत हुआ अवलोकन करते हैं॥

इस पुस्तक में कुछ ऐसे वाक्य और विषय दृष्टिगोचर होंगे जो बार बार कथन किये किम्वा लिखे गये हैं। किसी लेख अथवा पुस्तक के लिये यह दूषण है, परन्तु बहुत स्थानों पर दूषण भी भूषण का काम देता है, कहीं कहीं विष भी अमृत के समान उपकारक होता है। घोर निद्रित को जगाने के लिये एक बार 'जागो' कहने से काम नहीं चलता, उस को कई बार 'जागो जागो' कह कर जगाने की आवश्यकता होती है। उपेक्षा और असावधानी जिसे की प्रकृति हो गई है, उस को एक एक विषय जब तक कई बार स्मरण न दिलाया जावे, जब तक दो दो तीन तीन बार कह कर उस के निमित्त उस को सतर्क न बनाया जावे, उस समय तक

सफलकाम होने की आशा बहुत ही स्वल्प होती है। अत-एव इन्हीं विचारों से मैं भी ऐसा करने के लिये बाध्य हुआ हूं। सुधी पाठक मेरे इस दोष को क्षमा करेंगे। इस के अतिरिक्त इतना और निवेदन करना समुचित जान पड़ता है कि हम पर दोषारोपण भलेही हो, परन्तु जिन वाक्य और विषयों के कारण दोषारोपण होने की सम्भावना है। यदि हिन्दूसमाज का एक प्राणी भी उन से उत्तेजित होकर अपने कर्तव्यकार्य्य की ओर यत्किंचित् भी अग्रसर होगा तो दोषा-रोपण होने पर भी मैं अपने को भाग्यवान और सफलमनो-रथ समझूंगा, विशेष लिखना बाहुल्यमात्र है।

विनयावनत

हरिऔध।

ॐ

उद्बोधन

श्रीमंगलमूर्त्तये नमः

'सनातनधर्म्म' बड़ा प्यारा नाम है—जो हिन्दू हैं, जिन की नसों में हिन्दू माता पिता का रक्त दौड़ रहा है, जो हिन्दू रजवीर्य्य से उत्पन्न हैं, इस पवित्र नाम को सुनकर उन के हृदय में एक अननुभवनीय आनन्द का स्रोत प्रवहमान होता है, और प्रेमातिरेक से वह मंत्रमुग्धवत् हो जाते हैं। किन्तु इस आनन्दविह्वलता और इस प्रेमजनित व्यामोह में क्या उन को 'सनातनधर्म' विषयक अपने कर्तव्य का भी ज्ञान है? क्या वह इस की संकटापन्न अवस्था पर कभी सच्चे हृदय से सकरुण अश्रुपात भी करते हैं? उन के प्यारे हिन्दू धर्म्म पर, उन की प्राणादपि गरीयसी सनातनधर्म्म मर्य्यादा पर, आज वज्र प्रहार हो रहा है, आज कुठार चल रहा है, आज हमारे ही रज वीर्य्य से उत्पन्न हिन्दूकुल कुलांगार उस को ध्वंस कर देना चाहते हैं, उस को जड़ मूल से उखाड़कर फेंक देना चाहते हैं। पर क्या हम इन अनर्थों को इन हृत्कम्प उपस्थित करनेवाले उत्पातों को, इन रोम रोम में अग्निप्रज्वलित कर देनेवाले दुष्कर्मों को, कभी यथारीति अपने हृत्पटल पर अंकित करते हैं? हमारी एक चप्पा पृथ्वी पर भी यदि कोई हाथ डालता है, यदि अन्याय रूपेण कोई उस को अपहरण करना चाहता है—तो हम बल रहते,

पौरुष रहते—शक्ति रहते, शरीर की एक शिरा में भी रक्त का प्रवाह रहते—उस को नहीं सह्य कर सकते, उस के लिये आकाश पाताल तक को हिला डालना चाहते हैं। पर आज हमारा धर्म्म का साम्राज्य लुट रहा है। आज हमारी जगत मुखोज्ज्वलकारिणी पैतृकसम्पत्ति निष्ठुरअत्याचारियों द्वारा बलात् विनष्ट की जा रही है, किन्तु हम निश्चेष्ट हैं, निष्क्रिय हैं, प्रगाढ़निद्राभिभूत हैं, क्या इस से भी बढ़कर शोक, लज्या, और दुःख की कोई दूसरी बात हो सकती है! क्या इस से भी अधिक कोई मर्म्मान्तिक कष्ट बतलाया जा सकता है! संसारमें हमारी धर्म्ममता प्रसिद्ध है, विश्वमें हमारा धर्म्माग्रह आदर्श है, प्राणीमात्र हमारी धर्म्माभिमानता पर उद्ग्रीव है परन्तु क्या यही हमारी धर्म्ममता है? यही हमारा धर्म्माग्रह है, और यही हमारा धर्म्माभिमान है? यदि ऐसीही हमारी धर्म्ममता है, यदि ऐसाही हमारा धर्म्माग्रह है, और यदि ऐसाही हमारा धर्म्माभिमान है, तो हम से बढ़कर प्रवंचक, हम से बढ़कर किंकर्तव्यविमूढ़, और हम से बढ़कर कापुरुष, आज पृथ्वीतल पर कोई दूसरी जाति नहीं है। ऐ हिन्दू जाति! ऐ निश्चल, निष्पन्द, निर्जीव हिंन्दू जाति! स्मरणरख! धर्म्मही तेरा बल है, धर्म्मही तेरी शक्ति है, धर्म्मही तेरे जातीय शरीर में जीवन है, धर्म्मही पर तेरा अस्तित्वनिर्भर है,—यदि इसी धर्म्म के विषय में तू इतना किंकर्तव्यविमूढ़ है, इतनाममताहीन है, इतना अलस वो स्वार्थान्ध है, इतना निष्क्रिय वो निश्चेष्ट है—तो समझले कि दो सहस्र वर्ष पूर्व का वही भयंकर समय पुनः दूर नहीं है कि जिस का रोमांचकर चित्र आज भी हृदय को प्रकम्पित और शोकाभिभूत कर देता है।

हमारी प्राचीन विचार की पण्डितमण्डली में से अधि-कांश का सिद्धान्त है कि यह दुर्दान्त कलियुग का समय है, आज कल धराधाम पर उस का चारों ओर अखण्ड प्रताप है, कलियुग के ऐसे दोर्दण्ड प्रताप के समय धर्म्म का संरक्षण, धर्म्म का उत्थापन, विडम्बना मात्र है। हमारे त्रिकालदर्शी पवित्र शास्त्रों में कलियुग में धर्म्म के पतन का जो उल्लेख है, धर्म्महास वो धर्म्मसंकट का जो उज्ज्वल चित्र अंकित है, वह विधाता की अखण्ड लिपि समान अवश्यम्भावी है, अचल अटल है-अतएव उस सिद्धान्त के विरुद्ध—उस भविष्य, वाणी के प्रतिकूल, कथित कार्य्य का अनुष्ठान, किसी कर्तव्य का निर्धारण, किसी प्रकार का आयास वो परिश्रम, व्यर्थ वो नितान्त भ्रममूलक है, इस स्थल पर वक्तव्य यह है कि हमारे पवित्र शास्त्रों में धर्म्म के पतन का, धर्म्महास वो धर्म्म-संकट का निस्सन्देह उल्लेख है, परन्तु साथही धर्म्म के पुनरुत्थान, धर्म्ममार्तण्ड के पूर्ण अंशुओं के साथ पुनः देदी-प्यमान होने का भी तो वर्णन है। और यदि धर्म्म-पतन, धर्म्म-ह्रास और धर्म्म-संकट के उपरान्त धर्म्म का पुनरुत्थान एवम् धर्म्म का पुनरुदय सुनिश्चित है, तो क्या धर्म्म संरक्षण और धर्म्मोत्थापन के लिये किसी अनुष्ठान का न करना परि-श्रम और अध्यवसाय से परांमुख होना एकान्त गर्हित, अत्यन्त अनुचित, और प्रथम कोटि की कापुरुषता नहीं है? क्या अभी धर्म्म का पतन नहीं हुआ, धर्म्म का ह्रास होने में क्या अभी कुछ सन्देह है? क्या अभी धर्म्मसंकट के लिये कोई दूसरा समय अपेक्षित है? आज वह दिन है कि वर्णाश्रम धर्म्म छिन्नभिन्न हो रहा है, देवता व पितर की विडम्बना की जा रही है, श्राद्ध वो तर्पण अकर्तव्य बतलाए

जाते हैं, मन्दिर वो मूर्ति पर वज्र चल रहा है–तीर्थों का संहार हो रहा है, भगवती भागीरथी की निन्दा की जारही है, ब्राह्मण साधु रौंदे जा रहे हैं, यज्ञोपवीत का सम्भ्रम नहीं रहा, शास्त्र पुराण की मर्य्यादा नहीं रही, सतीत्व का नाम लोप हुआ, अनेक पाति की व्यवस्था हुई, क्या इस से अधिक अभी कुछ और धर्म्म की विडम्बना होगी। यह वह दुष्कर्म्म है जिन को सुनकर महापापी को भी हृत्कम्प उपस्थित होता है, महा नारकी को भी रोमांच होते हैं- अनेक जन्म का पामर भी त्राहि भगवन् कह कर कान पर हाथ रखता है- किन्तु आज इन कर्म्मों के करनेवाले, आज इन विषयों पर कटिबद्ध रहने वाले, आज इन्हीं कार्य्यों को धर्म्मसंगत वो श्रेय समझनेवाले, सर्वजनआदृत हैं, लोक पूज्य हैं-और जहां देखो वहीं उन की विजय दुन्दुभी निनादित है। कहते हृदय विदीर्ण होता है–जो पवित्र और पुण्यश्लोक, वेदधर्म्म के सेतु हैं, मर्य्यादा के कल्पतरु हैं, सत्क-र्म्म के सर्वोत्कृष्ट सोपान हैं, उन्हीं पवित्र वेदों में उन्हीं आर्य्य जाति के एक मात्र गौरवस्तम्भों में इन नारकीय दुष्कर्म्मों की व्यवस्था दिखलाई जाती है, इन घृणित पातकों का विधान बतलाया जाता है- और उन्हीं को इन कदर्य्य कार्य्यों का आश्रयस्थल और प्रतिपादक कहा जाता है। अब इस से अधिक धर्म्म का पतन क्या होगा? अब इस से विशेष धर्म्म-ह्रास की कौन सूचना होगी? और अब इस से बढ़ कर धर्म्म विप्लव का कौन सा समय आवेगा? किन्तु समादर-णीय हिन्दूसज्जनो! जो कुछ होना था हो चुका, धर्म्म पर जो बीतना था बीत चुका, हम पुकार कर डंके की चोट कहते हैं, कि अब धर्म्म के पुनरुत्थान का, अब धर्म्म के पुन-

हृदयका, अब धर्म्म की पुनर्जागृति का समय है- तुम सचेष्ट हो जाओ, मानापमान को भूल जाओ, ईर्षा, द्वेष को छोड़ दो, स्वार्थ-परता को तिलांजुली दो, अपने कर्तव्यको समझो देखो धर्म्म की मर्य्यादा स्थापित होती है कि नहीं—और सनातन धर्म्म की जय से दिग दिगन्त पूर्ण हो जाता है कि नहीं। यदि मेरी इस उक्ति में इदं कुतः हो, यदि मेरे इस कथन में तर्क वितर्क हो, यदि यह कहा जावे, कि अभी धर्म्मपतन, धर्म्मह्रास की पूर्ण मात्रा नहीं हुई, अतएव अभी धर्म्म के पुनरुत्थान वो धर्म्म जाग्रति का समय भी नहीं आया, तो हम कहेंगे कि मृत्यु सुनिश्चित होने पर भी क्या रुग्न वो व्याधिग्रस्त की औषधि करना अकर्तव्य है ? यदि अकर्तव्य नहीं है, तो धर्म्मपतन, धर्म्मह्रास वो धर्म्मविप्लव सुनिश्चित होने पर भी क्या प्राणादपि प्रियतर धर्म्म के लिये ही सचेष्ट वो सयत्न होना अकर्तव्य है ? हमारी अलस प्रकृति, हमारी कर्तव्यविमूढ़ता, हमारे निरुत्साह ने आज हम को संसार में मुख दिखलाने योग्य नहीं रखा, आज हम को प्राणीमात्र में कदर्य्य वो नीच बनाया, आज उसी अलस प्रकृति, किंकर्तव्यविमूढ़ता और निरुत्साह का यह फल है कि हम धर्म्म पराङ्मुख हैं, और उस के पतन का भाण करके उस के विषय में अपना कोई कर्तव्य निश्चित नहीं करते। कैसे कष्ट की बात है कि स्त्री पुत्र के विषय में हमारे कर्तव्य हैं, गृह परिवार के विषय में हमारे कर्तव्य हैं, धनजन के विषय में हमारे कर्तव्य हैं, यहां तक कि प्रतिपालित पशु और आरोपित वृक्ष तक के विषय में हमारे कर्तव्य हैं, परन्तु यदि हमारे कुछ कर्तव्य नहीं हैं, तो धर्म्म के विषय में नहीं हैं। हा ! परमात्मन् ! हमारे कैसे दुर्दिन हैं, हम में कैसी जड़ता हो गई है, जो धर्म्म

के विषय में, उस धर्म्म के विषय में जिस पर हमारा जीवन मरण निर्भर है, हमारी हिन्दू जाति हमारे हिन्दू जाति के अग्रणी ऐसे कर्तव्यविमुख और ऐसे उत्साहशून्य हैं। स्मरण रखना चाहिये, स्वस्थ माता पिता की अपेक्षा, रोगशून्य गुरुजनों की अपेक्षा, व्याधिग्रस्त माता पिता के विषय में, आपद्ग्रस्त गुरुजनों के विषय में, हमारे कर्तव्य का दायित्व कहीं अधिकतर है। फिर क्या उस धर्म्म के विषय में, जो हमारी माता पिता का भी पिता है, जो हमारे गुरुजनों का भी गुरु है, जो हमारे पूज्यों का भी पूज्य है, उस को पतनोन्मुख देख कर उस को संकटापन्न अवलोकन कर हमारे कर्तव्य-दायित्व की मात्रा अधिक नहीं हो गई है? अवश्य हो गई है!!! और यदि हमारे हृदय में स्पन्दन है, यदि हमारे रक्त में उष्णता है, और यदि हमारे गात्र में उत्साह का लेशमात्र है, तो हम को दृढ़ता के साथ उत्साह और परिश्रम के साथ धर्म्म संरक्षण के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये, और संसार को भीत चकित कर के दिखला देना चाहिये कि 'यतोधर्म्मस्ततोजयः' सज्जनो! संसार कार्य्यक्षेत्र है। यहां का एक एक पत्ता धूलि का एक एक कणा अपने अपने कार्य्य में संलग्न हैं। उदीयमान सूर्य्य, प्रवहमानमारुत, शब्दायमान आकाश, घूर्णायमान वसुंधरा, क्षण क्षण उदात्त स्वर से क्या शिक्षा दे रहे हैं? यही कि कार्य्यं कुरु। संसार निश्चेष्ट वो निष्क्रिय रहने का स्थान नहीं है, यहां प्रत्येक कर्तव्य कार्य्य के लिये प्रतिपल सचेष्ट रहना ही श्रेयः कल्प है। जिस कार्य्य के लिये हमारा कर्तव्यदायित्व जितनाही अधिक है, जितना ही उच्च है, और जितनाही गुरुतर है, उस महत् और विशाल कार्य्य के लिये हम को उतनाही अधिक सचेष्ट

उतनाही अधिक यत्नवान् और उतनाही अधिक अध्यवसायशील होने की आवश्यकता है। जगत के उज्ज्वल रत्न भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों से लेकर ग्राम्यभाषा की साधारण कहावतों पर्यन्त का पर्य्यावेक्षण यदि आप सूक्ष्म दृष्टि से करेंगे, तो आप को प्रतिपन्न हो जावेगा, कि धर्म्म से बढ़कर हिन्दू जाति के लिये कर्तव्य कार्य्य अन्य नहीं है, और ऐसी अवस्था में यह निर्विवाद है कि धर्म्म के लिये हम को समधिक सचेष्ट, विशेष तर यत्नवान और अधिकतर अध्यवसायशील होना अपेक्षित है—परन्तु अत्यन्त मनोवेदना के साथ हम यह प्रकाशित करते हैं कि हमारा आचरण इस सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है। हम एक अकृत कर्म्मापुरुष समान यह निश्चित किये बैठे हैं, इस सिद्धान्त पर उपनीत हैं, कि धर्म्म का पतन अवश्यम्भावी है, अतएव उस के लिये उद्योग करना निष्फल है, यत्न करना व्यर्थ है, और परिश्रम करना विडम्बना है। हम को पौरुष का अभिमान है, उत्साह का गर्व है, अध्यवसाय का दम्भ है, यत्न का मद है, और शक्ति का उन्माद है—परन्तु धर्म्म का नाम सुनतेही—हमारा पौरुष नष्ट हो जाता है, उत्साह ध्वंस हो जाता है, अध्यवसाय रसातल को चला जाता है, यत्न मिट्टी में मिल जाता है, और शक्ति का पता तक नहीं लगता। ऐसा होने पर भी हम को पुरुष होने का, धर्म्मप्राण बनने का, अध्यवसायशील कहलाने का, रोग है। छिः छिः छिः न जानें हमलोग कैसी मिट्टी से बनेहैं—और हम लोगों के रक्त पर कितना पाला पड़ गया है। परिणामदर्शिता उत्तम गुण है, फलप्रद कार्य्यही उत्कृष्ट है, यह सत्य है कि "प्रयोजन मनुद्दिश्यनमन्दोपि प्रवर्तते" किन्तु इस से भी श्रेष्ठतर, इस

से भी उच्च कोटि का, इस से भी अधिक श्रेयस्कर कोई सिद्धान्त है, इसलिये दर्शन विज्ञान के सर्वोच्च शिखरारूढ़ हमारे परमाराध्य भगवान श्री कृष्ण संसार को विमुग्ध करके तार स्वर से क्या आज्ञा करते हैं–कर्म्मण्ये वाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन–परन्तु क्या हमारे पास ऐसे श्रद्धायुक्त कर्ण हैं ? क्या हमारे पास ऐसा विश्वासपूर्ण हृदय है ? जिस में इस महावाक्य की प्रतिध्वनि ठीक ठीक होती है ? यदि वास्तव में हमारे पास ऐसे श्रद्धावान कर्ण हैं, ऐसा विश्वासपूर्ण हृदय है तो हम मुक्त कंठ से कहते हैं कि हमारे रक्त की एक एक बूंद, हमारे शरीर का एक एक रोम, हमारे कोटिशः परमाणुपुष्ट गात्र का एक एक अणु-एक एक तेजः पुंजअग्नि-स्फुलिंग से न्यून नहीं है, जो आलस अनुत्साह, भ्रम और प्रमाद तृणसमूह को क्षण मात्र में भस्मीभूत करने की विलक्षण शक्ति रखता है। परन्तु यदि उस महापुरुष के इस वाक्य के लिये–जिस को हम अपना परमाराध्य कहते हैं, जिस को स्वयं ब्रह्म कह कर आज सहस्रों वर्ष से पूजते आते हैं—हमारे कर्ण ऐसे श्रद्धायुक्त नहीं हैं, हमारा हृदय ऐसा विश्वास पूर्ण नहीं है, तो उचित है–वरन महान कर्तव्य है कि हम ऐसे कर्णों को नोच कर फेंक दें, और ऐसे कलुषित हृदय को खंड खंड कर डालें । और जिस पातकी शरीर ने आज तक इन को वहन किया है, उस को अगाध जलधि-गर्भ में विसर्जन कर दें, जिस में हमारे पापों का उचित प्रायश्चित्त हो"।

अब से पन्द्रह सौ वर्ष के पूर्व से दो सहस्र वर्ष पूर्व तक का समय पवित्र सनातन धर्म्म के लिये घोर दुर्दिन का था, उस समय भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में बौद्ध धर्म्म का अखण्ड

प्रताप था, उस की विजयदुंदुभी के गुरु गंभीर निनाद से दिग्दिगन्त विकम्पित था, महाप्राण बौद्ध श्रामणों का धर्म्म-कोलाहल महाराजाधिराज के समुच्च स्वर्गस्पर्द्धिनी अट्टालिका से एक क्षुद्रश्रमजीवी के पर्णकुटीर पर्य्यन्त समस्वर से श्रुत होता था, सम्पूर्ण भारत के दण्डमुण्डाधिकारी महामडिपाल बौद्ध भिक्षुकों के सामने नतमस्तक थे, जनसमाज की आन्तरिक सहानुभूति हृदय का सम्पूर्ण उच्छ्वास बौद्धधर्म्म की प्रतिष्ठा सम्पादन में पर्य्यवसित था। वेद के कार्य्यकलाप लुप्तप्राय थे। वर्णाश्रमधर्म्म कण्ठगतप्राण था, न वैदिकधर्म्म पर किसी की आस्था थी, न वैदिकधर्म्म व्याख्याता का कहीं समादर था, ग्रामों में कठिनता से दो चार सनातन धर्म्मावलम्बी शेष थे, पर उन की भयानक दुर्गति का ठिकाना न था, नगरों की दशा इस से भी अधिक भयंकर थी, वहां सैकड़े पीछे एक दो का दर्शन भी दुर्लभ था, सम्पूर्ण भारतवर्ष से संकुचित होकर काशी और प्रयाग जैसे धर्म्म पीठों में वैदिक धर्म्म ने शरण ग्रहण किया था, पर इन स्थानों से भी इस के बहिष्कृत करने की चेष्टा में त्रुटि न थी। ऐसे कराल काल में वैदिकधर्म्म के ऐसे घोर विप्लव के दिनों में हमारे सामने एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हुआ। दक्षिण प्रान्त के एक क्षुद्र पल्ली में एक पितृहीन बालक के महत्कण्ठ से एक लोकविस्मयकर शब्द श्रुत हुआ। इस क्षुद्र पल्लीजात निरवलम्ब ब्राह्मणकुमार का, इस दण्ड कमण्डलु मात्र सम्बल एक सहज संन्यासी का, यह लोकविस्मयकर शब्द हिमधवल हिमाचल के एक एक शृंगों पर प्रतिध्वनित हुआ, उत्ताल तरंगमाली जलनिधि के प्रत्येक कूलों पर प्रतिघातित हुआ। इधर जो पुण्य सलिला भगवती भागीरथी

के पवित्र तटों पर वह शब्दायमान हुआ, तो उधर कलकल वाहिनी गंभीरतोया गोदावरी के पुनीत पुलिनों पर निर्घोषित हुआ, भारतवर्ष के एक एक कोनों में उस की ध्वनि हुई, महानगरी से क्षुद्रपल्ली पर्यन्त उस से मुखरित हुए। उस ने मृतप्राय वैदिक धर्म्म के निर्जीव नसों में रक्त संचार किया, नष्टप्राय वर्णाश्रमधर्म्म मर्य्यादा को सजीव बनाया, लोप होते हुए सनातन धर्म्म की रक्षा की, और प्रतिक्षण वर्द्धनशील नास्तिकवाद को दमन किया। उस के प्रताप से वैदिक कार्य्य कलाप की पुनः प्रतिष्ठा हुई, भगवद्गुणानुबाद से दिग्दिगन्त प्रतिध्वनित हुआ, घर घर शास्त्रचर्चा हुई, पितरों को बलि मिला, देवताओं का समादर हुआ, और उस की विजयदुन्दुभी भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में प्रबलरूप से निनादित हुई। इतनाही नहीं, उस के वैद्युतिक प्रवाह ने यहां के रजकणों को बारूदकण बना दिया। वह आकाश में उड़े, प्रभावान नक्षत्रों में परिणत हुए, उन में कोई जर्मन में चमका, कोई अमेरिका में प्रकाशित हुआ, किसी ने इंगलैण्ड में प्रभाविकीर्ण की, और किसी किसी का ज्योतिःपुंज अब तक वसुंधरा के प्रत्येक विभागों में प्रभावितरण कर रहा है। यहीं उस के महत्त्व की इति श्री नहीं होती। यदि स्वनाम धन्य पुरुष महात्मा स्वामी रामतीर्थ के कण्ठ से हम अपना कण्ठ मिला दें, तो हम दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि आज वही विश्वव्यापी होने का, संसार के यावत् प्राणियों के एकमात्र पथ प्रदर्शक बनने का स्वत्व रखता है, और आज उसी के सामने धरातल के सम्पूर्ण धर्म्म नतमस्तक होने के लिये अग्रसर हैं।

महामहिम भगवान् शंकराचार्य्य वैदिक धर्म्म के उन घोर दुर्दिनों में यदि सोचते कि यह कलियुग है, इस में धर्म्म का पतन अवश्यम्भावी है। यदि विचारते कि जो अवश्यम्भावी है, उस के लिये किसी कर्तव्य का निर्धारण विडम्बना मात्र है, श्रम वो प्रयास व्यर्थ है, तो न जानें पवित्र वैदिक धर्म्म के लिये आज कौन सा समय उपस्थित होता, परन्तु उन घोर दुर्दिनों में भी उन्हों ने ऐसा नहीं सोचा। और जो कुछ कर दिखलाया, आज समस्त संसार उस की प्रशंसा में सहस्रमुख है। किन्तु आज वैदिक धर्म्म के लिये न तो वह घोर दुर्दिन उपस्थित है, न अभी उस का वैसा समूल संहार हो रहा है, तथापि हम विचलित हैं, पश्चात् पद हैं, और किसी कर्तव्य निर्धारण में अक्षम हैं। वर्त्तमान बीस करोड़ हिन्दुओं में से, अनेक उन के पदानुसरण करनेवाले हैं, अनेक उन के धर्म्म का दम भरनेवाले हैं, अनेक उन के नाम पर उत्सर्ग होनेवाले हैं, अनेक उन के सजातीय हैं. अनेक उन के वंशधर हैं और अनेक उन के कार्य्य को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। परन्तु क्या इन में से एक प्राणी में भी, इन में से एक आत्मा में भी, उक्त महात्मा के आत्मिक बल का शतांश भी, उक्त महोदय के सच्चे धर्म्मोत्साह का सहस्रांश भी उपस्थित है? "सत्ये नास्ति भयं क्वचित्" अतएव हम करोत्तोलन पूर्वक कहते हैं कि कदापि उपस्थित नहीं है, क्योंकि यदि उक्त आत्मिक बल का शतांश भी, कल्पित धर्म्मोत्साह का सहस्रांश भी दश बीस नहीं दो चार प्राणियों में भी उपस्थित होता, तो आज पवित्र सनातन धर्म्म पर इस प्रकार दुराक्रमण का समय न आता। वास्तव बात यह है कि उक्त विशेषणों को किम्वा पूर्वोल्लिखित

सम्बन्धों को केवल आत्म सम्मानलाभ किम्वा आत्मप्रतिष्ठा स्थापन के निमित्त हम सर्व साधारण के सन्मुख धारण करते अथवा प्रगट करते हैं। हमारीदृष्टि इस ओर सर्वथा नहीं है कि उक्त विशेषणों के धारण किम्वा पूर्वोल्लिखित सम्बन्धों के प्रकटीकरण का मुख्य उद्देश्य क्या है? किन्तु जो उद्देश्य-ज्ञान की मूर्त्ति था, जो आत्मत्याग का जाज्वल्यमान उदाहरण था, जो धर्म्म प्राणता का साक्षात् अवतार था, और जो कर्तव्यनिष्ठा का एक मात्र आदर्श था, यदि उस के सजातीय होकर, उस के वंशधर कहला कर, उस के पदानुसरणकारी बनकर, उस के धर्म्म का झंडा लेकर, हम मुख्य उद्देश्य समझने की चेष्टा न करें, स्वार्थसाधन वो व्यर्थ के आडम्बर में ही संलग्न रहें, और आत्मप्रतिष्ठा स्थापन और आत्मसन्मान लाभही को अपना परम कर्तव्य समझें, तो हम को इस कलंकपूर्ण वो पापमय जीवन को लेकर अब इस सुरदुर्लभ पवित्र भारतभूमि को कलंकित न करना चाहिये, वरन हम लोगों को रसातल के किसी जन-हीन प्रान्त में, अफरिका के वहुदूर विस्तृत मानवशून्य मरुभूमि में किम्वा आस्ट्रेलिया के असंख्य पादपश्रेणीपूर्ण सहस्रशः क्रोशव्यापी निर्जन अरण्य में, स्थानअन्वेषण करना चाहिये, जिस में इस पुण्यस्थान को कोई दूसरा धर्म्मनिष्ठ कर्तव्य-परायण देवचरित्र पुरुष आकर सुशोभित करे।

प्रायः हम ने अनेक पंडितों से सुना है, पंडितों के अति-रिक्त और भी धर्म्मप्राण हिन्दुओं ने इस बात की चर्चा की है, कि देखो कैसा भयानक समय आकर उपस्थित हुआ है, कि अब भारतीय धर्म्मशिक्षा की अधिष्ठात्री देवी भी एक क्रिश्चियन स्त्री है। यहां के लोगों की धर्म्म-पिपासा अब

विद्वान ब्राह्मणों से नहीं निवृत्त होती, उन की ज्ञान-शिक्षा अब भारतीय संत महात्माओं द्वारा नहीं सांग होती, अब धर्म्मपिपासा निवृत्ति के लिये, ज्ञानशिक्षा सांग करने के लिये भी, इंगलेण्डनिवासिनी विचित्रचरित्रा एक पादरीपत्नी की आवश्यकता है। पूज्य पंडितों का यह कथन, धर्म्मप्राण हिन्दुओं की यह उक्ति, यद्यपि जातीय गौरव और स्वधर्म्म ममता से परिपूर्ण है, यद्यपि स्वदेश वत्सलता और आत्म-निर्भरता उस में कूट कूट कर भरी हुई है। किन्तु विचारना तो यह है कि वास्तव में समय की प्रतिकूलता ही उक्त कृश्चियनस्त्री, किम्वा विचित्रचरित्रा पादरीपत्नी के अभ्युत्थान और कृतकार्य्यता का कारण है—अथवा कोई दूसरा हेतु भी है। मेरा विचार है कि जो कर्म्मठ व्यक्ति हैं, जिन में अदम्य उत्साह है, लोकोत्तर साहस है, अश्रुतपूर्व अध्यवसाय है-समय कभी उन के प्रतिकूल नहीं होता- वह समय को प्रतिपल और प्रतिक्षण अपने अनुकूल पाते हैं-जड़समय में क्या सामर्थ्य है जो ऐसे जीवन्त महानुभाव की प्रतिकूलता कर सके। किन्तु जिन में यह गुण नहीं है, अलस-प्रकृति किंकर्तव्यविमूढ़ता, आदि ही जिन के सम्बल हैं, समय को अनुकूल कर लेना जिन को आता ही नहीं, वही समय की प्रतिकूलता का राग अलापा करते हैं। मनुष्य कितनाही बड़ा निष्कर्म्मा और अपदार्थ क्यों न हो, पर वह किसी दोष को अपने मत्थे मढ़ना अच्छा नहीं समझता, वह सर्वदा कोई न कोई युक्ति अपनी अपदार्थता के निराकरण का उद्भावन करता रहता है; और यही सिद्धान्त किंकर्तव्य विमूढ़ किम्वा अलस होने पर हम को समय की प्रतिकूलता का राग अलापने के लिये अग्रसर करता है, नहीं तो समय की प्रतिकूलता

भी कोई वस्तु है। सोचने का स्थान है कि जिस स्त्री का इस भारतवर्ष में एक भी सहायक, एक भी हितैषी, एक भी सुपरिचित व्यक्ति न था जिस के निवासस्थान और भारतवर्ष के बीच में सहस्रों कोश पर्यन्त उर्म्मिमालासंकुल अगाध जलशाली समुद्र तरंगायमान था, स्वयं उसी की जाति के लोग, उसी की जाति के धर्म्मोपदेष्टागण, जिस के रक्त के पिपासु थे, उस स्त्री ने, स्त्री होने पर भी, पुरुषोचित गुणों की न्यूनता-रखने पर भी क्या किया-वह असंख्य मतवाद घनपटल समाच्छन्न भारतगगन में अचांचक विद्युत समान प्रद्योतित हुई, और उस के उल्वण प्रकाश से देखते ही देखते समस्त दिग्मण्डल आलोकित हो गया-आज वह भारतवर्ष के शिक्षित मण्डली की शीर्ष स्थानीया है, और प्रतिदिन भारत में उस की प्रतिपत्ति और प्रतिष्ठा परिवर्द्धित हो रही है। परन्तु हम इसी भारतभूमि में उत्पन्न होकर, यहीं के पवन पानी में पलकर, यहां के धर्म्मनेता कहलाकर, समाजपरिचालक बन कर, सब प्रकार की क्षमता रख कर, करोड़ों सत्पुरुषों में श्रद्धा विश्वास के रहते, करोड़ों भावुक भक्तजनों द्वारा पूजित होते भी, अधः पतित हैं, स्थानच्युत हैं, और पदभ्रष्ट हैं। दिन दिन हमारी प्रतिपत्ति कम होती जाती है, प्रतिष्ठा उठती जाती है और समादर घटता जाता है। इस का क्या कारण है? क्या समय की प्रतिकूलता इस का कारण है? मैं कहूंगा कदापि नहीं। वास्तव बात यह है कि जो देश काल का ज्ञान नहीं रखता, जिस की दृष्टि परिणामदर्शिनी नहीं है, जो उद्योगशून्य है, लक्ष्यच्युत है, उद्देश्यरहित है, जिस में कर्तव्य-परायणता नहीं, उत्साह नहीं, साहस नहीं, यदि वह भगवान भुवनभास्कर के समान प्रतापशाली है, तो भी

उस का पतन होगा, और अनन्त काल के लिये उस का नाम इस परिवर्त्तनशील संसार स्रोत में निमग्न हो जावेगा, और यदि ये गुण उस में हैं तो वह रजकण से भी अधिक अपदार्थ क्यों न हो, परन्तु एक अद्भुत ईश्वरीय बल से बलीयान होकर नभोमण्डल में उस दुरन्त तेज से देदीप्यमान होगा, कि जिस की प्रसाद भिक्षा करने में राकारजनीरंजन कलानाथ का हृत्कमल भी सुविकसित और समुत्फुल्ल होगा।

कर्तव्यपरायणा एनीबेसण्ट की अवस्था साठ वर्ष से न्यून नहीं है, अंग अंग शिथिल हो गया है, उन के लिये वह समय उपस्थित है जब प्राणी विश्राम के लिये कोमल आस्तरण की चिन्ता में लग्न होता है—परन्तु उन को विराम नहीं है, विश्राम नहीं है, कठोर परिश्रम करने में श्रान्ति नहीं है। उन का एक पांव भारतवर्ष में है तो दूसरा इंगलैण्ड में,—आज वह अमेरिका में हैं तो कल फ्रान्स में—गहन वन, दुर्गम पर्वत, तरंगशाली समुद्र, कल्लोलशालिनी सरिता, उन के उत्साह को भंग नहीं करतीं, उन के साहस को क्षीण नहीं बनातीं, और उन की दुरन्त आशा की बाधिका नहीं होतीं। उन को कोई प्रपंचकारिणी कहता है, कोई पापाचारिणी कह कर गाली देता है, कोई मायारूपिणी बनाता है, कोई कपट की साक्षात् मूर्ति बतलाता है, परन्तु वह इन बातों पर भ्रूक्षेप तक नहीं करतीं, इन कटूक्तियों की परवाह तक नहीं करतीं, उन की दृष्टि है तो अपने कर्तव्य की ओर, उन का ध्यान है तो अपने कार्य्यसाधन की ओर, संसार के दूसरे समस्त प्रपंचों से उन को कोई सम्बन्ध नहीं। आज उन के रोम रोम से यही ध्वनि निकल रही है कि "स्वका-

य्र्यम् साधयेत् धीमान् कार्य्यभ्रंशोहि मूर्खता " और यही कारण है कि उस क्रिश्चियन स्त्री का उस विचित्रचरित्रा पादरीपत्नी का भारतवर्ष में इतना समादर है। और क्यों न हो, जब कि चारित्र्यबल ही चरमोत्कर्ष लाभ का सर्वोत्कृष्ट सोपान है। मेडमब्लावस्की एक रशियन महिला थीं, मिसेज़ एनीबेसण्ट एक इंगलिश स्त्री हैं, न यह दोनों एक देशवासिनी थीं न इन दोनों में कोई आत्मसम्बन्ध था, तथापि यह दोनों एक जातीया हैं, स्त्री वह भी थीं, स्त्री यह भी हैं, जातीयता क्या वस्तु है, जातीयता का क्या महत्त्व है, जातीयता में कैसे चमत्कारक गुण हैं, जातीयता में कैसी वैद्युतिक-क्षमता है आज हम लोग इस के अवगत करने में अक्षम हैं, किन्तु यूरोपियन जातियां इस महामंत्र की पूर्णोपासक हैं, वह इस के जगतविमुग्धकारी गुण को पूर्णतया जानती हैं। आज इसी महामंत्र से दीक्षित होकर, आज इसी महामंत्र से मुग्ध होकर—जिस काल थियासोफी के प्रसार वो वृद्धि की कामना से मिसेज़ एनीबेसण्ट कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण होती हैं, उस काल वह विशाल पर्वत को भी हस्तामलक समझती हैं, अपार समुद्र को भी गोपद समान उत्तीर्ण होती हैं, और कठिन बज्र को भी पुष्प के समान आलिङ्गन करती हैं—क्यों कि वह एक उन की सजातीया का, एक स्त्री जाति का, प्रचारित धर्म्म है। हमारी ईर्षाकलुषित वक्रदृष्टि उन के ऊपर पतित होती है, हमारा असूयासंदग्ध हृदय उन के विरुद्ध उद्वेलित होता है, किन्तु हमारी उसी दृष्टि में उन के गौरवान्वित सद्गुण स्थान नहीं ग्रहण करते, और हमारे उसी हृदय में उन की कठोर कर्तव्य परायणता, उन की अलौकिक जातीयता का समादर नहीं होता। मिसेज़ एनी-

बेसण्ट किसी आत्मसम्बन्ध न रहने पर भी, एकदेशीया और एककुलोत्पन्ना न होने पर भी, केवल सजातीयता के नाते, समानधर्म्मा होने के सम्बन्ध से, मेडमब्लावस्की के प्रचारित सिद्धान्त के लिये, उस के प्रदर्शित पथ के लिये-स्वार्थ को तिलांजलि देने के लिये सन्नद्ध हैं, मानमर्य्यादा से हस्ताक्षेपण करने के लिये प्रस्तुत हैं, आत्मोत्सर्ग तक करने के लिये बद्धपरिकर हैं। किन्तु जिन महामहिम लोकोत्तर-चरित्र महात्माओं ने सनातनधर्म्म का प्रचार किया है, जिन समस्त संसार के एक मात्र पथप्रदर्शक महत्‌जनों ने उस के सत् सिद्धान्तों से जगत का मुख उज्वल किया है उन्हीं आर्य्य-कुल-तिलकों के वंशधर कहलाकर, उन्हीं लोक विश्रुतकीर्ति अत्रि, अंगिरा, गौतम, कपिल, कणाद, के रज वीर्य्य से उत्पन्न होकर, उन्हीं पुण्यश्लोक मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र वो श्रीकृष्ण से रुधिरसम्बन्ध रख कर, उन्हीं के सदेशीय वो सजातीय बनकर, अपने प्राण से भी प्रियतर धर्म्म की दुर्दशा देखते हुए भी, अपने जगद्वंद्य सिद्धान्तों पर सांघातिक प्रहार होते हुए भी, हम निश्चल, निस्पन्द हैं, अलस वो किंकर्तव्यविमूढ़ हैं, न वह अदम्य उत्साह है, न वह प्रगाढ़ कर्तव्यपरायणता है, न वह स्वार्थत्याग है, न वह आत्मोत्सर्ग है, न वह दुस्साहस है, और न वह कठोर अध्यवसाय है—फिर किस मुंह से हम समय की प्रतिकूलता का विषय उत्थापन करते हैं, और क्या मुंह लेकर हम मिसेज़ एनीबेसण्ट के विरुद्ध कुछ कथन का साहस करते हैं। यदि हम को वास्तव में स्पर्द्धा है, यदि हमारे हृदय में कुछ भी प्रतिद्वंदिता का लेश है, तो हम को वीरदर्प से, पुरुषोचित उमंग से, कार्य्य-क्षेत्र में दण्डायमान होना चाहिये और लोकोत्तर आत्मोत्सर्ग

के साहाय्य से प्रतिपन्न कर देना चाहिये कि हम निर्जीव नहीं हैं, निष्प्राण नहीं हैं, अब भी हमारे रुधिर में वैद्युतिक प्रवाह है, और अब भी हमारे रोमों में अग्न्युद्गीरण की क्षमता है।

हम को स्मरण है गत वर्ष जब पुण्यश्लोक महाराजकुमार दीक्षित जवानसिंह का स्वर्गारोहण हुआ, जब धर्म्मगतप्राण महाचेता बाबू माधोप्रसाद हाल्लूवासिया का लोकान्तर हुआ, उस समय सनातनधर्म्मावलम्बियों में हाहाकार मच गया था, उन के आर्त्त क्रन्दन से दिशायें प्रतिध्वनित हो उठी थीं। इस अनित्य संसार में जन्म मरण नित्यही होता है, प्रतिवर्ष ही दो एक राजे महाराजे, सेठ और महाजन इस धराधाम से उठ जाते हैं—परन्तु हिन्दूसमाज जितना इन दोनों महानुभावों के स्वर्गारोहण होने पर विचलित और खिन्न हुआ, उतना और समय होते नहीं देखा गया। हिन्दूधर्म्म में जैसी प्रगाढ़ निष्ठा इन महात्माओं की थी, जैसा यह लोग इस धर्म के लिये उत्सर्गीकृतजीवन थे, ऐसे महत् व्यक्ति इस भारतवर्ष में अब बहुत अल्प हैं, ऐसे महात्मागण जब अपना स्थान शून्य कर के स्वर्ग की यात्रा करते हैं तो उन का स्थान पूर्ण करनेवाला प्राणी अब भारतवसुंधरा उत्पन्न नहीं करती और यही कारण है कि इन दोनों महापुरुषों के स्वर्गारोहण करने पर हिन्दूसमाज इतना मर्म्माहत हुआ था। आज वह दिन उपस्थित है कि चेष्टा करने पर भी लोग सनातन धर्म्म की ओर प्रवृत्त नहीं होते, बहुतही दुखपूर्ण हृदय से, बड़ेही करुणस्वर से, लोगों के हृदय पर हिन्दूधर्म्म की संकटापन्न अवस्था अंकित की जाती है, किन्तु वह इधर भ्रूक्षेप तक नहीं करते। यदि यह लोग कुछ सभ्यता से काम लेते

हैं तो दो चार सहानुभूति सूचक शब्दों द्वारा थोड़ा बहुत आंसू पोछ भी देते हैं अन्यथा ऐसी कटूक्ति करते हैं, ऐसे दुर्वचन कहते हैं, जिस को सुनकर अन्य धर्म्मावलम्बियों को भी दांतों उंगली दाबनी पड़ती है। यह उन के वंशधरों की अवस्था है, यह उन के रज वीर्य्य जात की गति है—जिन्हों ने धर्म्म के लिये संसार को तृण गिना, प्राण को तुच्छ जाना और शरीर को एक कच्चे घड़े से अधिक न समझा। जिस धर्म्ममता के वशीभूत होकर सोमनाथ के पवित्र मन्दिर पर कई सहस्र क्षत्रिय वीरों ने आत्मोत्सर्ग किया, जिस धर्म्माग्रह के गुरुत्वबल से प्रातस्मरणीय महात्मा राणा प्रताप ने चतुर्दश वर्ष वनवास की असह्य यन्त्रणा की ओर दृक्पात भी न किया, और जिस धर्म्मासक्ति के महत्त्व ने महाप्राण महाराज मानसिंह को सम्राट् अकबर के अनुरोध की रक्षा न करने के लिये वीरदर्प से बाध्य किया, आज वही धर्म्ममता, वही धर्म्माग्रह, वही धर्म्मासक्ति, आर्य्यसन्तानोंद्वारा उपेक्षित, अनादृत, और पद-दलित है, और आज उसी की अप्रतिष्ठा उन के जीवन का प्रधान लक्ष्य है। जिस दिन एक एक वार में सहस्रों मुण्ड धराशायी होते थे, जिस दिन एक एक बार सैकड़ों निरपराध दीवारों में चुने जाते थे, जिस दिन अबोध बालकों का कलेजा निकाल कर मर्म्माहत पिताओं के ऊपर फेंका जाता था, जिस दिन धर्म्म का नाम लेते जलते चिमटों से जीभ निकाली जाती थी, जब राज्यध्वंस होता था, धन धरती अपहरण की जाती थी, पुत्र कलत्र वध होते थे, घर बार दग्ध किया जाता था, उस दिन हम धर्म्मोन्मत्त थे, उस दिन हम ने धर्म्ममता न छोड़ी, परन्तु आज न वह दुर्दिन है,

न वह कठोर उत्पीड़न है, तथापि हम धर्म्मपराङ्मुख हैं और दिन२ धर्म्ममता छोड़ते जाते हैं। फिर क्यों न महाराजकुमार दीक्षित जवान सिंह और तेजस्वी वैश्यकुमार बाबू माधो प्रसाद जैसे धर्म्मप्राण पुरुषों के असमय स्वर्गारोहण होने से हिन्दूसमाज विचलित होगा? और क्यों न उस के मुख से हृदय-विदीर्ण-कारिणी आह विनिर्गत होगी?

इस समय इस विषय के उत्थापन की कोई आवश्यकता न थी, और न इस हृत्कम्पकरी घटना के उल्लेख का कोई प्रयोजन था, परन्तु हिन्दू समाज की दृष्टि को मुझे इस ओर आकर्षित करना है कि वह कौन से कारण हैं जिन से ऐसे महानुभाव अब उत्पन्न नहीं होते, और इसी लिये इस विषय की यहां चर्चा की गई है। आज उन्नति का दिन है, भारतवर्ष की प्रत्येक दिशाओं से उन्नति की ध्वनि उत्थित हो रही है, यहां का जनसमाज द्रुतगति से उन्नति पथ में धावमान है, जिस को देखो वही उन्नति का राग अलाप रहा है—फिर क्या कारण है, कौन सी बाधा है, जिस से हिन्दूधर्म्म के, उन्नतिपथ में कांटे पड़ रहे हैं, और वह कौन सी त्रुटि है, जिस से सनातनधर्म्म समुन्नत होने के स्थान पर संकुचित हो रहा है। हमारा शास्त्र कल्पतरु है, अगाध समुद्र की भांति विस्तृत वो गंभीर है, उस में प्रत्येक काल की व्यवस्थायें लिपिबद्ध हैं, उस में प्रत्येक रोग की उपयुक्त औषधि उल्लिखित है, ऐसी कोई विघ्नबाधा नहीं जिस के उपशम की उस में युक्ति न हो, और ऐसा कोई उपद्रव और उत्पात नहीं जिस की शान्ति की उस में व्यवस्था न हो। हमारे शास्त्र के जो सिद्धान्त समयानुकूल हैं, जिन सिद्धान्तों के प्रचार से देश का, समाज का,

हिन्दूजाति और धर्म्म का मंगल हो, आज उन्हीं सिद्धान्तों के प्रचार की आवश्यकता है, आज उन्हीं सिद्धान्तों की ओर सर्व साधारण को प्रवृत्त करने का प्रयोजन है। हमारे कोई धर्म्मशास्त्र, हमारे कोई धर्म्मग्रंथ, ऐसे नहीं हैं, जिन में देश काल, और पात्र का बिचार ज्वलन्त अक्षरों में न लिखा गया हो, और जिन में समयानुकूल कार्य करने की व्यवस्था स्पष्ट वाक्यों में न दी गई हो। हमारे शास्त्रकर्ता, हमारे धर्म्मशास्त्रप्रणेता, सर्वज्ञ थे, त्रिकालदर्शी थे, उन की सूक्ष्मदृष्टि विस्तृत थी, उन का ज्ञान सर्वदेशी था, वह लोग न संकीर्ण मार्गों में विचरण करते थे, न अपने आस पास की वसुंधरा को ही समस्त संसार समझते थे, उन्हों ने जो कुछ लिखा है, वह मानवसमाज के लिये अमृत है, प्राणी मात्र के लिये कामधेनु है, और प्रत्येक समय के लिये विधिबद्ध आईन है। यदि उन लोगों का विचार इतना उन्नत न होता, यदि वह लोग ऐसे सर्वद्रष्टा न होते तो मनुधर्म्मशास्त्र के अतिरिक्त आज अष्टादश धर्म्मशास्त्र न तो हस्तगत होते, और न चारों वेद के अतिरिक्त षड्दर्शन और न अष्टादश पुराणों के रचना की आवश्यकता होती। यदि मनु और याज्ञवल्क्य आज इस पृथ्वीतल पर वर्त्तमान नहीं हैं, यदि वशिष्ठ और व्यास की पवित्र मूर्त्ति इस धराधाम को आज पुनीत नहीं कर रही है, तोभी भारत वसुंधरा में अभी ऐसे ऐसे उदारचरित्र महात्मा, ऐसे ऐसे पुण्यश्लोक विद्वान, उपस्थित हैं, जो शास्त्रों को मथन कर के ऐसी उपादेय पद्धति को संग्रह कर सकते हैं, जो इस दुरन्त समय में इस कठोर काल में भी, हिन्दूसमाज और हिन्दूधर्म्म के लिये संजीवनी बूटी का काम दे सकती है। यह सत्य है

आज हम को पुण्यकीर्ति महाराज हरिश्चन्द्र, और युधिष्ठिर नहीं प्राप्त हो सकते हैं, आज हम को वैदिकधर्म्म के सच्चे परित्राता महाराज विक्रमादित्य, और भोज नहीं मिल सकते हैं, परन्तु हम सदर्प कहते हैं कि अभी ऐसे धर्म्मप्राण क्षत्रिय भूपाल, ऐसे स्वधर्म्मनिष्ठ क्षत्रियमहाराजे, हस्तगत हो सकते हैं, जो शास्त्रानुकूल, समयोचित धर्म्म व्यवस्था के संरक्षण और प्रचार के लिये वैसेही बद्धपरिकर और उत्साहशील होंगे जैसा कि एक धर्म्मगतप्राण वीरधर्म्मा कश्चित् क्षत्रिय महाराज हो सकता है। परन्तु दुःख इतना ही है कि इस समय हमारे हिन्दूसमाज में सुशृंखलता नहीं है, एकप्राणता नहीं है, सुव्यवस्था नहीं है, न सच्चा धर्म्मोत्साह है, और न सच्चा आत्मोत्सर्ग है। हमारे में आज भी अनेक सद्‌गुण हैं, हम आज भी अनेकांश में सर्वांग पुष्ट हैं, परन्तु खेद है कि हम को अपने सद्‌गुणों का विकाश करने नहीं आता, और हम अपनी सर्वांगपुष्टता को यथातथ्य कार्य्य में परिणत नहीं कर सकते। सहनशीलता हम में आवश्यकता से अधिक हो गई है, प्रत्येक कार्य्यों में उपेक्षा हमारा धर्म्म हो गया है, किन्तु सहनशीलता की भी मित होनी चाहिये, उपेक्षा की भी सीमा होनी चाहिये, किसी गुण का आवश्यकता से अधिक व्यवहार अकृतकार्य्यता का प्रथम लक्षण है। जागो, देखो, किंकर्तव्यविमूढ़ता विभीषिकामयीतमिस्रा रजनी का शनैः शनैः अंत हो रहा है, कर्तव्यज्ञान बालार्क की अरुण रागरंजित रश्मियां दिगन्त को उद्‌भासित कर रही हैं—आंख खोलो, और उसकी विकाशच्छटा से प्रतिविकसित पदार्थों पर दृष्टि डालो—उन में से उपादेय सामग्री को संग्रह

करो, उन के द्वारा स्वयं पुष्ट बनो, अपने में शक्ति संचय करो और उस पुष्टता और शक्तिबल से कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण होकर आत्मोत्सर्ग करो, अदम्य उत्साह से काम लो। अपने अनेक भागों में विभक्त सद्गुणों को एकत्रित करो। स्थान स्थान में विकीर्ण रत्नों द्वारा मनोज्ञमणिमाला बनाओ, इतस्ततः उत्क्षिप्त तृणों के समवाय से सुपुष्ट रज्जु निर्माण करो, यत्र तत्र उपेक्षित रजकणों द्वारा दीर्घाकार स्तूप की रचना करो, और इन एकत्रित सद्गुणों के साहाय्य से जन साधारण के हृदय में स्थान ग्रहण करो, इन मनोज्ञमणिमालाओं द्वारा असंख्य विघ्न बाधाओं से उत्तीर्ण हो, सुपुष्ट रज्जुओं के आधार से उच्छृंखल प्राणियों का शासन करो, समुच्च गगनस्पर्शी विशाल स्तूपों द्वारा विश्व में सत्य की घोषणा करो, देखो पुनः क्षत्रियकुल तिलक महाराजकुमार जवान सिंह ऐसे धर्म्म वीर और वैश्यवंश विभूषण बाबू माधोप्रसाद हाल्लूवासिया ऐसे धर्म्मप्राण, यह भारत वसुंधरा उत्पन्न करती है या नहीं, और पुनः सत्य की जय, और सनातनधर्म्म की जय से दिग्दिगन्त उद्घोषित हो जाता है या नहीं, सुनो मेघगंभीरनाद मे शास्त्र क्या कहता है किं दूरम् व्यवसायिनाम्।

सज्जनगण! मेरा हृदय इस समय इस आशंका से आन्दोलित हो रहा है कि आप लोगों में ऐसे महोदय भी होंगे, जो सोचते होंगे कि मैं बड़ा क्षुद्र हृदय, बड़ाही कटुभाषी, और प्रथमकोटि का अदूरदर्शी एवम् नीचमना हूं, क्योंकि जिस हिन्दू जाति की संख्या बीस कोटि है, जिस में बड़े बड़े धर्म्मप्राण महात्मा, बड़े बड़े शास्त्र पारंगत विद्वान, बड़े बड़े धर्म्मधुरन्धर महाराजाधिराज, बड़े बड़े धर्म्मनिष्ठ महाजन,

बड़े बड़े कर्म्मठ व्यक्ति, और बड़े बड़े अध्यवसायशील पुरुष विद्यमान हैं, उस हिन्दूजाति को बात बात में किंकर्तव्यविमूढ़ और अलस कहना, कापुरुप और स्वार्थान्ध बनाना, कभी निष्क्रिय, निश्चल, निष्पन्द कह कर गालीदेना, कभी निरुत्साही, संकीर्ण हृदय, अदूरदर्शी बतलाकर निन्दाकरना बड़ी भारी धृष्टता, प्रथमकोटि की निरंकुशता, और महान अविमृश्यकारिता है। क्या अब यही शेष रह गया कि हिन्दू जाति रसातल को चली जाय, अथवा अफरिका की मरु भूमि वा आस्ट्रेलिया के अरण्य में स्थान-ग्रहण करे? क्या उस को अब अगाध जलधि गर्भ ही धारण कर सकता है? क्या ज्वलन्त अग्नि में आत्मविसर्जन ही उस के लिये अब सर्वसम्मत विचार है? क्या हिमाचल के सर्वोच्चशृंग ही उस की आत्मग्लानि के अब प्रधान अवलम्बन हैं? यदि नहीं तो क्यों ऐसी ऐसी क्षुद्र वो घृणित बातें कह कर हिन्दू जाति कलंकित वो अपमानित की जाती है? क्यों उस को ऐसे ऐसे कठोर वाक्य वाणों का लक्ष्य बनाया जाता है? निर्जीव कहते कहते जाति निर्जीव होती है, कापुरुष कहते कहते जाति में कापुरुषता का प्रवेश होता है, फिर क्यों ऐसे शब्दों से वह स्मरण की जाती है, और क्यों उस को यह सब लाञ्छन लगाने का साहस किया जाता है? बात बहुत सत्य है, जिन महोदयों के हृदय में ऐसे विचार उठते होंगे, मैं भक्ति भाव से उन को प्रेम पुष्पाञ्जलि अर्पण करता हूं, क्योंकि जिस के हृदय में जातीय प्रेम तरंगायित होगा, जो जातीय ममता के मनोमुग्धकारी मंत्र से दीक्षित होगा, उसी के हृदय में इस प्रकार के विचार उठने की संभावना है, और ऐसे महात्मा सर्वथा पूजनीय और वन्द्य हैं। परन्तु मेरी अति

विनीत प्रार्थना यह है कि क्या वास्तव में प्रमाद के वशीभूत हो कर मैंने ऐसा लिखने का साहस किया है ? क्या वास्तव में मैं ऐसा नीचमना हूं, ऐसा क्षुद्र हृदय और अदूरदर्शी हूं, कि हिन्दूजाति का महत्त्व, हिन्दूजाति का गौरव, मेरे लिये चक्षुशूल है, और मैं स्वतः प्रवृत्त हो कर उस को कलुषित और दूषणीय बनाना चाहता हूं। क्या धर्म्मप्राण महात्माओं, शास्त्र पारंगत विद्वानों, धर्म्मधुरन्धर महाराजों, धर्म्मनिष्ठ महाजनों, एवम् दूसरे हिन्दू सज्जनों के लिये, मेरे हृदय में श्रद्धा विश्वास नहीं है, मानसम्भ्रम नहीं है, जो मैं उन को कटु शब्दों द्वारा स्मरण करता हूं, और घृणित लांछनों द्वारा लांछनित बनाता हूं। महाशयो ! प्रिय सज्जनो ! शान्तिशील हिन्दूजाति पर, उदार प्रतिष्ठित हिन्दू सज्जनों पर, नहीं नहीं, हिन्दूजाति के किसी एक क्षुद्र अंग पर, हिन्दू समाज के किसी एक साधारण पुरुष पर, भी, स्वयं लांछन लगाना और कटु शब्द प्रयोग करना तो दूर ! किसी अन्य को लांछन लगाते देख कर, कटु शब्द प्रयोग करते सुन कर, हृदय को जो पीड़ा होती है, जो मर्म्मान्तिक कष्ट होता है, यदि क्षमता होती तो मैं आप लोगों को अपना हृदय खोल कर दिखलाता, परन्तु दुःख है कि इस विषय में मैं सर्वथा अक्षम हूं। हिन्दूजाति मेरी जन्मदाता है, उस के प्रतिष्ठित सज्जन मेरे सीस-मुकुट हैं, उस का साधारण प्राणी भी मेरा बन्धु है, मेरे शरीर का अंग है, मुझ में कहां ऐसी शक्ति है जो मैं उस के विरुद्ध कुछ कहने का साहस करूं। उस से बढ़कर पापात्मा इस पृथ्वीतल पर कौन है, जो वृथा अपनी जाति पर कलंक पंक निक्षेप करता है, और निष्प्रयोजन उस की अवमानना के लिये बद्धपरिकर होता है। किन्तु जब मैं

समयानुकूल मुसलमानों के धर्म्मोत्साह, धर्म्मप्राणता, और अद्भुत कार्य्य क्षमता को अवलोकन करता हूं, जब मैं क्रिश्चियन सम्प्रदाय के धर्म्मवीरों को अलौकिक तेज, अभूतपूर्व दर्प और साहस, से कार्य्य क्षेत्र में विचरण करते देखता हूं, जब मैं एक आधुनिक छोटी सी संख्या आर्य्यसमाज में लोगों को आत्मोत्सर्ग करते हुए, अविश्रान्त कार्य्यकारिणी शक्ति से काम लेते हुए निरीक्षण करता हूं, और तत्पश्चात् अपनी सामयिक किंकर्तव्यविमूढ़ता, अपनी निरुत्साहिता, और अपनी एकान्त अलसता पर दृष्टिपात करता हूं, तो हृदय संक्षुब्ध होता है, उत्कट आत्म-पीड़ा से शरीर जर्जरित होता है, और आंखों के सन्मुख एक भयंकर अंधकार छा जाता है। ऐसे आत्म-विस्मृति के समय, ऐसे रोमांचकर व्यामोह के समय, हिन्दूजाति के लिये, हिन्दूसमाज के भद्र पुरुषों के लिये, किसी असंयत वाक्य का प्रयोग हो जाना आश्चर्य नहीं। किन्तु जिस असंयत किन्तु सत्य वाक्य में हितैषिता का अंश है, जो कटुवादिता प्राणी के लिये औषधि का गुण रखती है, जो कठोर वचन ईर्षा द्वेष शून्य है, प्रेम और अनुरागपूर्ण है, वह कभी ताच्छिल्य प्रकाश करने के योग्य नहीं है, और न वह प्राणी पापात्मा अथवा नीचाशय हो सकता है, जो आन्तरिक कष्ट से व्यथित होकर एक सदुद्देश्य से ऐसा करने के लिये वाध्य हुआ है। हम विश्वव्यापी वृहत् मुसल्मान सम्प्रदाय किम्वा क्रिश्चियन सम्प्रदाय को नहीं लेंगे, उस छोटी सी संख्या आर्य्यसमाज ही को लेते हैं, जिस में अब तक हिन्दू रजवीर्य्य से उत्पन्न संतान ही संयुक्त हैं, और दिखलाया चाहते हैं कि हिन्दू धर्म्मावलम्बियों और उन में कितना अंतर है। पं० भगवान दीन एक ब्राह्मणसंतान हैं,

पं० तुलसीराम एम. ए. भी ब्राह्मणवंश के ही कुमार हैं, उसी जाति में ही इन लोगों का जन्म हुआ है, कि जिस के समान दुर्वचन की अधिकारिणी जाति आर्य्यसमाजियों की दृष्टि में दूसरी नहीं है। परन्तु देखिये आर्य्यसमाज में जाने पर इन लोगों में कैसा परिवर्तन हुआ है, पं० भगवान दीन ने आर्य्यसामाजिक उद्देश्य के प्रचार वो वृद्धि के लिये डिप्टी कलक्टरी ऐसा पद छोड़ा, घर की बहुत बड़ी सम्पात्ति उस के अर्पण की। और अब तन मन से उस की सेवा करना ही उन के जीवन का प्रधान लक्ष्य है। दूसरे पुरुष पं० तुलसीराम ढाई सौ मासिक के प्रधान कर्म्मचारी थे, आप ने इस उच्च पद से हस्ताकर्षण किया, निस्स्वार्थ और निष्काम भाव से अपने को आर्य्यसमाज के अर्पण किया, और आज कल उस के सिद्धान्तों का अचल अटल भाव से प्रचार करना ही उन का मुख्य उद्देश्य है। पंजाब प्रान्त के कर्म्मवीर लाला लाजपत राय और लाला हंसराज का नाम भी इस अवसर पर उल्लेख योग्य है, इन में से प्रथम जन लाला लाजपत राय लाहौर के प्रसिद्ध वकील हैं, इन की वकालत की जितनी आय है उस में से अपने निर्वाह योग्य द्रव्य लेकर शेष समस्त आय को वह आर्य्यसमाज के अर्पण करते हैं, और इस के अतिरिक्त वकालत से जितना समय बँच जाता है उस सम्पूर्ण समय को वह आर्य्यसमाज की सेवा करने में व्यय करते हैं। दूसरे पुरुष लाला हंसराज दयानन्द ऐंग्लो बैदिक कालिज के आनरेरी प्रिन्सिपुल हैं, आप विना एक पैसा वेतन लिये उक्त कालिज में निस्स्वार्थ भाव से कार्य्य करते हैं। इन के एक भ्राता इन को पचास रुपया मासिक देते हैं, यह इतनी ही आय में अपनी संसार यात्रा निर्वाह

करते हैं, और अहर्निश आर्य्यसमाज की हितकामना में संलग्न रहते हैं। यह लोग हिन्दूधर्म्म और हिन्दूजाति के कितने ही बड़े शत्रु क्यों न हों, प्रकारान्तर से वैदिकसिद्धान्तों का इन लोगों द्वारा समूल संहार क्यों न होता हो, हम लोगों से उन का प्रत्येक उद्देश्य और सिद्धान्तों में महान विरोध ही क्यों न हो, परन्तु जिस सिद्धान्त को उन लोगों ने ग्रहण किया है, उस के लिये उन लोगों का इस प्रकार का आत्मोत्सर्ग इस प्रकार का अपूर्व उत्साह और अध्यवसाय सर्वथा प्रशंसनीय है, और कोई हृदयवान ऐसा न होगा जो उन लोगों की इस स्वधर्म्म परायणता की सहस्र मुख से प्रशंसा न करे। दुःख है कि जब हम अपने हिन्दूसमाज पर दृष्टि डालते हैं तो देशकालानुसार हिन्दूधर्म्म के प्रसार, वृद्धि, और संरक्षण के लिये इस प्रकार आत्मोत्सर्ग और प्रयत्न करनेवाले दो चार सज्जन भी दृष्टिगत नहीं होते, और यदि दो चार सज्जन का होना स्वीकार भी करलें तब भी यह संख्या समुद्र में दो चार बूंद से अधिक नहीं है, क्या यह हिन्दूजाति के लिये कलंक का विषय नहीं है? क्या इस से अधिक कोई दूसरा लांछन हिन्दूसमाज के लिये हो सकता है? क्या इस से हमारी किंकर्तव्यविमूढ़ता और स्वार्थान्धता नहीं सिद्ध होती? और ऐसी अवस्था में यदि सदुद्देश्य से हिन्दूसमाज को उस के दुर्गुणों से अभिज्ञ किया जावे, उस को सतर्क और सावधान बनाया जावे, तो क्या यह प्रमाद और नीचता है, धृष्टता और कटुवादिता है। आर्य्यसमाज ही क्या जिन हिन्दूसंतानों पर कोई भी दूसरा रंग चढ़ गया है, जिन हिन्दू वंशधरों ने हिन्दू-धर्म्म, गंडीर से बाहर दो चार डेग भी आगे रक्खे हैं, हम उन्हीं को उत्साहशील, उन्हीं को उद्योगशील, उन्हीं

को आत्मोत्सर्गपरायण, और उन्हीं को कार्य्यक्षेत्र में कर्त्तव्यनिष्ठ, अवलोकन करते हैं, परन्तु यदि यह गुण नहीं हैं तो हम सनातनधर्म्मावलम्बियों में नहीं हैं, और क्या इस से मर्म्मवेदना नहीं होती ? और हृदय दग्ध नहीं होता ? पूना के फरगुसन कालेज में विद्वद्वर प्रांजपे ऐसे गणितशास्त्र के पारंगत, देशहितैषी शिरोमणि गोखले ऐसे अद्वितीय वक्ता, केवल निर्वाह मात्र अति अल्प वेतन लेकर कार्य्य कर सकते हैं, क्योंकि उन लोगों पर प्रार्थना समाज का रंग चढ़ा हुआ है। सेंट्रल हिन्दूकालेज बनारस में, डिप्टीकलक्टरी छोड़कर बाबू भगवानदास आनरेरी सेक्रेटरी का पद ग्रहण कर सकते है, जरा जर्जरित होने पर भी पेंशन प्राप्त पं० छेदालाल सुपरिंटेंडेंट बोर्डिंगहौस बन सकते हैं, और निस्स्वार्थ भाव से आत्मोत्सर्गपूर्वक कर्म्म कर सकते हैं, क्योंकि थियासोफिकल सोसायटी के मंत्र से यह लोग दीक्षित हैं। परन्तु श्री भारतधर्म्म महामण्डल में अथवा इसी प्रकार की किसी अन्य हिन्दूधर्म्म सम्बन्धिनी संस्था में हमारे अपार हिन्दू भाइयों में से दो चार सुजन भी इस प्रकार का आत्मोत्सर्ग करने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं, क्योंकि वह स्वच्छ हिन्दू हैं, और अब तक उन पर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ा है—हा ! क्या वह कलंक सह्य होता है ! क्या इन बातों के स्मरण होते ही हृदय खंड खंड नहीं होने लगता ! क्या हमारी यह भयानकनिर्जीविता नहीं है !!! क्या अब हम अपनी पवित्र नसों में दूसरे का रुधिर प्रवेश करा कर ही सशक्त होंगे ? क्या अब हम अपने पांवों के बल खड़े न हो सकेंगे ? प्यारे सनातनधर्म्मावलम्बियो, तुम्हीं इस का उत्तर दो। आर्य्यसमाज के वार्षिक उत्सवों पर प्रतिवर्ष दो एक

उत्साही पुरुष आत्मोत्सर्ग करते हैं, सम्पूर्ण स्वार्थों से मुंह मोड़ कर आजन्म उस की सेवा के लिये बद्धपरिकर होते हैं, परन्तु सनातनधर्म्मावलम्बियों में कितने सज्जन ऐसे हैं, जो इस प्रकार का उदाहरण दिखलाने में समर्थ हैं, आज पन्द्रह वर्ष से भारतधर्म्म महामण्डल स्थापित है, उस की असफलता की ध्वनि जिधर से सुनो उधर से ही सुनाई देती है, परन्तु उस को पुष्ट करने के लिये, उस को सशक्त बनाने के लिये, उस को नियमबद्ध वो सर्वप्रिय करने के लिये कितने सज्जनों ने आत्मोत्सर्ग किया, कितने भद्र पुरुषों ने स्वार्थ को तिलाञ्जलि दी, क्या कोई साहस कर के बतला सकता है ? जब हमारे हिन्दू समाज की यह अवस्था है, जब वह ऐसे घोर प्रतिद्वन्दिता के समय ऐसा निद्रित है। तो जिस के हृदय में थोड़ी भी हिन्दूजाति और हिन्दूधर्म्म की ममता है, उस का हृदय क्यों न आलोड़ित होगा, क्यों न उस के हृदय पर गहरी चोट लगेगी, और ऐसी अवस्था में यदि यह उस को उस की भयंकर निश्चेष्टता से अभिज्ञ करेगा, तो कौन ऐसा मर्म्मज्ञ है जो उस के इस कृत्य को घृणित समझेगा, और उस को हिन्दू-जाति का निन्दक बतलाने की चेष्टा करेगा।

अब तक जो कुछ हम ने कहा है उस से यह न निश्चित कर लेना चाहिये कि मैं महान हिन्दूजाति के अलौकिक सद्गुणों से सम्पूर्ण अनभिज्ञ हूं, किम्वा विद्वेषियों समान उस के तमस-अंश प्रदर्शन करने में ही अपना परम पुरुषार्थ समझता हूं। हिन्दूजाति किम्वा हिन्दूसमाज के नेताओं पर यदि कलंकारोपण हो सकता है तो केवल हिन्दूधर्म्म के संरक्षण के विषय में हो सकता है, यदि उन में निर्जीवता, अनुत्साह

और अनात्मोत्सर्ग है, तो इस विषय में है कि वह हिन्दूधर्म्म की नित्य पतनोन्मुख दशा को ठीक ठीक अनुभव नहीं कर सकते हैं, उस के प्रसार एवम् वृद्धि की ओर उन की यथोचित दृष्टि नहीं है, और वह यह नहीं निश्चित कर सकते कि हिन्दूधर्म्म के वर्द्धनोन्मुख संकटों के निवारण के लिये उन के प्रधान कर्तव्य क्या हैं। और यही एक देश ऐसा है कि जिधर समुचित दृष्टि न देने कारण मुझ को आन्तरिक कष्ट से उन के विरुद्ध कुछ बातें कहनी पड़ी हैं। किन्तु इस कथन का यह भाव कदापि नहीं है कि हिन्दूजाति किम्बा इस जाति के अग्रणी सर्वांश में निर्जीव, किंकर्तव्यविमूढ़, निष्कर्म्मा, और उत्साहशून्य हैं। हिन्दूधर्म्म के सिद्धान्तों के पालन करने में, दयादाक्षिण्य आदि सद्गुणों के व्यवहार करने में, आज भी जो सजीवता इस जाति में है, आज भी जो उत्साह और कर्तव्यनिष्ठा इन लोगों में उपस्थित है, वह संसार की अन्य जातियों के लिये एक अत्यन्त दुर्लभ सामग्री है। इस जाति में सहस्रों साधु महात्मा और पण्डित जन ऐसे दुरन्त समय में भी इस प्रकार के हैं कि राज्य-विभव पर भी उन की दृष्टि सतृष्ण पड़ने में संकुचित होती है, यह महाभाग पुत्र कलत्र से वीतराग हैं, संसार के समस्त सुखों से वीतश्रद्ध हैं, इन में शरीर तक की ममता नहीं होती, मानापमान का इन को ध्यान तक नहीं होता, केवल स्वधर्म्मपालन और स्वधर्म्मकृत्य सम्पादन ही इन के जीवन का प्रधान लक्ष्य होता है। सहस्रों ऐसे सत्पुरुष हैं परोपकार ही जिन का प्रधान व्रत है, सदुपदेशही जिन के जीवन का प्रधान उद्देश्य है, वह आप साधारण कम्बलों को ओढ़ कर अपना समय व्यतीत करते हैं, और याचकों

को प्रसन्न चित्त से बहुमूल्य ऊर्ण वस्त्र प्रदान करने में भी अन्यमना नहीं होते। आज भी हिन्दूसमाज में प्रतिवर्ष करोड़ों मुद्रा दान होता है, करोड़ों मुद्रा दीन दरिद्र और कंगालों के भरण पोषण में व्यय होता है। करोड़ो रुपये आज भी देवमंदिरों के निर्माण में, साधु महात्माओं की सेवा में, पर्वोत्सवों के समारोह में, धर्म्मशालाओं की सदाव्रतों में लगते हैं। फिर कौन कह कसता है कि हिन्दूजाति में सजीवता नहीं, आत्मोत्सर्ग नहीं, और हिन्दूजाति सद्व्यय करना नहीं जानती। वास्तव बात यह है कि आज कल हम लोग अन्तःचक्षु से काम बहुत कम लेते हैं, बहिःचक्षुही हम लोगों के लिये सर्वेसर्वा है, और यही कारण है कि हम लोगों की दृष्टि इन सुकार्य्यों पर नहीं पड़ती, और हमलोग हिन्दुओं के विरुद्धकथन करने को उद्यत हो जाते हैं। हिन्दूजाति अपने धर्म्म विश्वास के अनुसार अपने परोपकार का विज्ञापन नहीं देती, अपने उत्तमोत्तम दानों की तालिका नहीं बनवाती, अपने धर्म्मकृत्यों को, अपने धर्म्मोत्साहों को, अपने विश्वविमुग्धकारी उदार भावों को, समाचारपत्रों में मुद्रण नहीं कराती, इसी से आजकल की सभ्यता के अनुरागियों की दृष्टि में उस का समादर नहीं है, और इसी लिये आज वह विद्वेषियों के वाक्वाण का लक्ष्य है। आज इस पवित्र पुण्यस्थल तीर्थराज में, पतितपावनी भगवती भागीरथी के विशालतटों पर जो बीस पचीस लाख धर्म्मप्राण हिन्दुओं की मण्डली समवेत है, और जैसा धर्म्मानुराग और धर्म्मोत्साह इन समस्त समवेत सज्जनों के मुखड़े से प्रगटित है, उस को अवलोकन कर कौन कह सकता है कि हिन्दूजाति मरण काल की अन्तिम स्वासें भर रहा है, कौन कह सकता है कि

हिन्दूजाति निर्जीव है, उत्साहशून्य है, उस में ऐकमत्य नहीं, एक भाव नहीं, एक उद्देश्य नहीं। आज के इस अलौकिक दृश्य को देख कर, असाधारण धर्म्मोन्माद को अवलोकन कर, जिस की आंखें नहीं खुलतीं, जो यह नहीं समझता कि आज भी हिन्दूजाति निष्प्राण नहीं है, आज भी उस के उत्साह की मात्रा विनष्ट नहीं हुई है, वह या तो हिन्दूजाति से विद्वेष परवश है, अथवा उस में गवेषणा और विचार की शक्ति नहीं है। आज कल किसी राजपथ के किनारे खड़े होकर यदि किसी हृदयवान पुरुष ने पैदल जाते हुए यात्रियों की मण्डली को देखा होगा, और उन के कृश, क्षीण शरीर और कष्टसहिष्णु भाव को अवलोकन किया होगा, तो उस ने अवश्य अपने हृदयपटल पर अंकित किया होगा, कि हिन्दुओं में धर्म्मविपयिणी महामाणता अब तक कितनी है। भगवान सरोजिनीनायक अभी उदयाचल चूड़ावलम्बी नहीं हुए हैं, कठोर तुषारपात और शीत से हाथ पांव विवश हैं, उन में वृश्चिक दंशन समान पीड़ा हो रही है, इस पर पश्चिमा वायु हृदय के मर्म्मस्थान को विद्ध करती हुई प्रवहमाना है, सुसज्जित गृह के सुरक्षित से सुरक्षित स्थान में शीतातंक से बड़े बड़े धैर्य्यवानों का धैर्य्य भी नष्टप्राय है, हृदय कम्पायमान है, किन्तु ऐसे कठोर और कष्टप्रद समय में भी कभी किसी उच्च अट्टालिका के निम्न भाग से कभी किसी सर्वोपस्कर सम्वलित सुधाधवलप्रासादों के सन्मुखस्थ पथों से असंख्य मानवमण्डली प्रवाह की भांति उमड़ी हुई जाती दृष्टिगोचर हो रही है, उन के प्राणोन्मत्तकारिणी श्रुतिमनोहर जयगंगे और हरहर ध्वनि से दिशायें प्रतिध्वनित हो रही हैं, उन के पावों में जूता नहीं

है, अंगों पर पूरा कपड़ा नहीं है, हिम की सहोदरा पश्चिमा वायु इन कपड़ों को भी यथास्थान नहीं रखती, कभी उस को हटा कर हृदय विद्ध करती है। कभी अंग अंग में प्रविष्ट होती है, तथापि यह मानवमण्डली पश्चात्पद नहीं है, और प्रतिपल अपने लक्ष्य की ओर धैर्य्यग्रहणपूर्वक अग्रसर हो रही है। यह मानवमण्डली कौन है? वही धर्म्मप्राण तीर्थयात्रियों का दल है, और उसी हिन्दूजाति का वह अन्तःपाती है, जिस को हम उत्साहशून्य और प्रथम कोटि का अलस और कर्त्तव्यविमुख प्रतिपादन करने में त्रुटि नहीं करते। कभी कभी ऐसा दृश्य देखने में आता है कि आकाश घोर घनाच्छन्न है, पानी पड़ रहा है, धड़ाके से बूंदें गिर रही हैं, तीव्र पश्चिमा वायु सनसनाती हुई बह रही है, परन्तु इन यात्रियों की मण्डली को यात्रा से विराम नहीं है, कठोर शीत की ओर भ्रूक्षेप नहीं है, वह भींग गये हैं, थर थर कांप रहे हैं, परन्तु आगे ही बढ़ते जाते हैं, कठोर से कठोर विघ्नबाधा उन के उत्साह को नष्ट नहीं कर सकती, भयानक से भयानक दैवी उत्पात उन को धैर्य्यच्युत नहीं बना सकता, क्या यह निष्प्राणता के लक्षण हैं? क्या इस में कठोर कार्य्यतत्परता नहीं झलकती? मृत्यु बड़ी भयावनी वस्तु है, किसी घोर कर्त्तव्य परायण व्यक्ति किम्वा किसी रणोन्मत्त वीर केशरी के व्यतीत, कोई भी इस को प्रसन्नवदन आलिंगन करना नहीं चाहता, परन्तु इन यात्रियों में कभी कभी ऐसीही महाप्राणता दृष्टिगोचर होती है। गवर्नमेन्ट मेले में कठोर मारात्मक रोग फैलने की सूचना दे रही है, मार्ग में भी सर्वत्र इसी विषय की भयानक चर्चा है, वह स्वयं भी अपनी आंखों प्रतिवर्ष सैकड़ों मनुष्यों का

अचांचक निस्सहाय अवस्था में मरना अवलोकन कर के अनुभव प्राप्त हैं, तथापि उन का हृदय मृत्युभय से भीत नहीं होता, मरणशंका से विचलित नहीं होता वह साग्रह अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होते हैं, और अपने अनुष्ठित कार्य की ओर धावमान होते हैं, क्या यह कठोर आत्मोत्सर्ग नहीं है ? क्या यह भयंकर आत्मबलि नहीं है ? हम इस को 'गतानुगतिको लोकः' कह कर ताच्छिल्य प्रकाश कर सकते हैं, एक अनुपयोगी व्यर्थ का धर्म्माग्रह बतलाकर नाक भौं चढ़ा सकते हैं , हम यह भी कथन कर सकते हैं कि यह एक अविद्याग्रस्त, अतत्त्वदर्शी जाति का शुष्क धर्म्माडम्बर है, निरर्थक क्रियाकलाप है, किन्तु वास्तव बात यह है कि ऐसी कष्टसहिष्णुता, ऐसा दुस्साहस, ऐसा आत्मोत्सर्ग, दिखलाने में स्वयं सर्वथा अक्षम और असमर्थ हैं। हमारी इन कतिपय पंक्तियों को पठन कर के यह भी कहा जा सकता है कि यह सत्यता का श्राद्ध कर के निष्प्रयोजन तिल को ताल बनाना है, जो विषय निस्सार एवम् अत्यन्त साधारण है उस को विशेष रांजित कर के प्रकाश करना कभी न्यायानुमोदित नहीं हो सकता। परन्तु प्रष्टव्य यह है, कि यात्रि-दल में जो कठोर कष्टसहिष्णुता, अपार श्रमशीलता, और मृत्युविषयिणी विचित्र निर्भीकता परिलक्षित होती है, क्या वह कृत्रिम है ? मेरा विचार है उन का परम शत्रु भी उस को कृत्रिम कहने के लिये अग्रसर न होगा, क्योंकि कृत्रिमता में स्थायित्व गुण नहीं होता। और जब वह कृत्रिम नहीं है, तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि वह चिरसंस्कार जनित किम्वा कठोर धर्म्मानुरागद्वारा परिवर्द्धित एक विचित्र शक्ति है। और ऐसी अवस्था में उस का यथातथ्य निरूपण तिल-

को ताल बनाना कैसे है ? और कैसे ऐसा करना सत्यता का श्राद्ध करना है ? क्या किसी विषय का चित्र ठीक ठीक अंकित करना उस को विशेष रंजित करके प्रकाश करना है ? और जब वह ऐसा नहीं है तो फिर न्यायानुमोदित क्यों नहीं है ? हम यह स्वीकार करेंगे कि हिन्दूजाति का यह धर्म्मोन्माद, यह धर्म्मविषयिणी महाप्राणता समयानुसार विशेष कार्य्यकारिणी नहीं है ? हम यह मानेंगे कि इस प्रकार का धर्म्माग्रह और एकान्त धर्म्माडम्बर आज कल विशेष फलप्रद नहीं है, यह कौन कहेगा कि अपनी आत्मा के लिये ही सब कुछ कर्तव्य नहीं है, अपनी जाति, अपने धर्म्म, के लिये उस से अधिक हम को कुछ कर दिखलाने की आवश्यकता है। यह कौन न मानेगा कि स्वार्थ से परमार्थ उत्तम है, उदरम्भरिता से परोपकार श्रेष्ठ है, देहशुद्धि से आत्मशुद्धि प्रधान है। परन्तु किस प्रकार हिन्दुओं के वर्त्तमान विचार का स्रोत समयानुकूल कर लिया जावे; कैसे हिन्दूजाति की दृढ़ धर्म्मपरायणता और कठोर धर्म्मप्राणता को सामयिक शुभ फलप्रद कार्य्यों के आकार प्रकार में सुगठित किया जावे, कैसे वह धर्म्मपालन की अपेक्षा धर्म्मसंरक्षण को अपना प्रधान कर्तव्य समझें, कैसे वह अपने धर्म्मकृत्यों और धर्म्माचरण को हिन्दूमात्र के लिये उपकारक वो उपयुक्त बना सकें विचारणीय और चिन्तनीय यही है। वास्तव में हिन्दूजाति निर्जीव नहीं है, निष्प्राण नहीं है, उत्साहशून्य नहीं है, अलस वो कर्तव्यच्युत नहीं है- जिस विषय में उस की सजीवता है, सप्राणता है, उत्साहशीलता है, उद्योग वो कर्तव्यपरायणता है, उसी विषय को उपयोगी बनाकर उस के इन समस्त सद्गुणों को विकासित और समयानुकूल कर

लेने का प्रयोजन है। भगवती भागीरथी के समुद्र दिग्गामी प्रवाह को दूसरी दिशा में प्रवाहित कराने की चेष्टा प्रमाद ही नहीं है, प्रथम कोटि की निर्बुद्धिता है, परन्तु उस समुद्र दिग्गामी प्रवाह में से अनन्त शाखा प्रशाखायें निकाल कर उसी प्रवाह के अपार जलराशि से नाना उपयोगी विधानों को कर के, स्वल्पायास में थोड़ी बुद्धिमत्ता से, हम अनेक फलप्रद कार्य्य कर सकते हैं, अनेक प्रकार के लाभ उठा सकते हैं, हम को यदि आवश्यकता है तो इसी बात की है। इस मर्म्म को न समझ कर जो अदूरदर्शी हिन्दुओं की वर्त्तमान रीति नीति को जड़ से उखाड़ कर फेंक देना चाहते हैं, हिन्दूजाति की वर्त्तमान शृंखला को छिन्न भिन्न कर डालना चाहते हैं, सर्व प्रकार से मटियामेट कर के उस को फिर से नये आकार प्रकार में गढ़ना चाहते हैं, वह स्वदेश के, हिन्दूजाति के परम शत्रु हैं, उन का किया हुआ कुछ नहीं हो सकता। वह हिन्दूजाति को रसातलगामी बनाने के लिये निस्सन्देह बद्धपरिकर हैं।

प्रिय हिन्दूजाति! तेरी निर्जीवता निष्प्राणता, किंकर्तव्यविमूढ़ता का गीत गाते गाते मुझ को तेरी सजीवता, सप्राणता और कर्तव्यपरायणता का उल्लेख करना पड़ा। हम को तेरा दुर्बल अंश ही दिखाना अभीप्सित था, सुपुष्ट और बलदृप्त विभाग दिखाने की कोई आवश्यकता न थी, परन्तु जब तक तुझ को अपनी शक्ति का ज्ञान न होगा, अपने यथेष्ट बल से तू अभिज्ञता लाभ न करेगी, उस समय तक तुझ में आत्मावलम्बन जो गुण है उस का विकाश न होगा। अतएव इस उद्देश्य से एवम् तेरे विपक्षियों का भ्रमान्धकार निवारण के लिये अनिच्छा होने पर भी मुझ को ऐसा करना पड़ा।

परन्तु संसार का नियम है कि अपने सद्गुणों की सुख्याति होते देख कर मनुष्य गर्वित हो जाता है, हम को तुझ को गर्वित बनाना अभिष्ट नहीं है, अतएव इस अभिज्ञता में जो गर्वान्वित होने का अंश है हम उस के परिहार करने की तुझ से प्रार्थना करते हैं। और अपने दुर्बल अंशों की ओर प्रवृत्त होने का साग्रह अनुरोध करते हैं। तू अपने दोषों की ओर दृष्टिपात कर और समुचित उत्तेजना के साथ उस के क्षालन करने में दत्तचित्त हो हमारा यही विनीत निवेदन है। तेरा विचार है कि हमारी संख्या आज भी बीस कोटि है, आज भी समुत्तुंग हिमाचल से समुद्र कूल परिशोभी कन्याकुमारी अन्तरीप तक हमारा धर्म्मकोलाहल तार स्वर से श्रुत होता है- आज भी प्रान्तवर्ती अफगानिस्तान से सुदूर स्थित ब्रह्मदेश पर्य्यन्त हिन्दूधर्म्म की विजय भेरी गुरु गम्भीर नाद से निनादित है, आज भी काशी श्रुतिमधुर संस्कृत शब्दोच्चारण से वैसीही मुखरा है, नदिया में आज भी अवच्छेदकावच्छिन्न का वैसाही गगनभेदी कोलाहल है भ्रष्टश्री अवधपुरी दिन दिन अधिक शोभाशालिनी हो रही है, पर्वोत्सवों पर पुण्यक्षेत्र प्रयाग धर्म्मक्षेत्र हरिद्वार आज भी समवेत मानवमण्डली से वैसीही अपूर्व शोभा धारण करते हैं, अब तक घर घर शास्त्र पुराण की चर्चा है, ग्राम ग्राम शास्त्रीय कार्य्यकलाप से पवित्रीकृत है, फिर चिन्ता का कौन स्थान है? आतंक और आशंका का कौन स्थल है? वर्ष में दश पांच हिन्दूकुल कलंक के अन्य धर्म्मग्रहण से हिन्दूजाति उच्छिन्न नहीं हो सकती, स्वदेश और स्वजाति शत्रु कतिपय अपरिणाम दर्शियों के हिन्दूधर्म्म पर अनुचित कटाक्ष करने से इस धर्म्म की विश्वव्यापिनी महिमा मलिन नहीं हो सकती

आगाध समुद्र में से सौ पचास घड़ा जल निकल जाने से समुद्र का क्या बिगड़ेगा ? पवित्रतोया भगवती भागीरथी में यदि कोई थूक देगा, यदि कोई मूत्र पुरीष कर देगा, तो उस की महिमा में क्या अन्तर होगा। परन्तु यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जावे तो यह विचार समीचीन नहीं है, युक्ति संगत नहीं है, ऐ हिन्दूजाति! यह तेरी महाभयंकर उपेक्षा है। कोई दिन था जब समस्त भूमण्डल पर हमारे हिन्दूधर्म्म का दोर्दण्ड प्रताप था, जब पवित्र वैदिकधर्म्म के झंडे के नीचे समस्त सुसभ्य देश समवेत होता था, अभी कल तक, दिगन्त विश्रुत-कीर्ति महानन्द और चन्द्रगुप्त के समय तक, तिब्बत, ततार, अफ़गानिस्तान, और ब्रह्मदेश में भी हिन्दूधर्म्म की विमुग्ध-कारिणी ज्योति विकीर्णित थी, जावा सुमात्रा और बोर्नियों में भी वैदिक क्रियाकलाप की विकासच्छटा प्रतिविकसित थी, परन्तु कहते हुए मर्म्मपीड़ा होती है कि आज तिब्बत तातार अफ़गानिस्तान और ब्रह्मदेश से भी हिन्दूधर्म्म विताड़ित है, आज सुमित्रा और वोर्नियों में भी उस का समूल संहार हो रहा है, विकृत अवस्था में जावा में वह अब तक विद्यमान है, किन्तु हमारी उपेक्षा से हमारे अमूलक कुसंस्कारों से, आज वह वहां से भी निर्मूल और विध्वंस होने के लिये अग्रसर है। हम इन सब स्थानों को छोड़ कर भारतवर्ष ही को लेते हैं, उसी भारतवर्ष को लेते हैं कि जिस भारतवर्ष में हमारा वैदिकधर्म्म अब समस्त भूमण्डल से संकुचित होकर विश्राम कर रहा है, परन्तु क्या इस भारतवर्ष में इस की दशा संतोषजनक है, जो भारतवर्ष केवल हिन्दूधर्म्म का क्रीड़ाक्षेत्र था, क्या आज उसी भारतवर्ष में उस की वही

निरन्तर वर्द्धनोन्मुख ज्योतिःकला है। हिन्दुओ! जिस समय तुम इस विषय को अभिनिवेश चित्त से विचारो गे, जिस काल इस प्रश्न पर गवेषणापूर्वक दृष्टि डालोगे, उस समय तुम्हारा हृदय चूर्ण होगा, और तुम्हारी निद्रित आंखों से रक्त की धारा निकलने लगेगी, आज उसी भारतवर्ष की २९ कोटि जनसंख्या में केवल २० कोटि तुम हो, शेष ९ कोटि अन्य धर्मावलम्बी हैं, इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्ष में भी अब एक तिहाई के लगभग अन्य धर्म्मावलम्बी हैं, और केवल दो तिहाई के लगभग तुम रह गये हो। इस अवशिष्ट बीस कोटि संख्या में भी इस समय जो हलचल है, जो असंतोष और अशान्ति है, वह किसी महाभयंकर समय के आने की सूचना दे रही है। जैन सम्प्रदाय हिन्दूधर्म्म की ही एक शाखा है, परन्तु कई सौ वर्ष हो गये कि वह हिन्दूसमाज से विछिन्न हुआ, और अब उस को हिन्दूधर्म्म और हिन्दूजाति से कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रह्मोसमाज आर्य्यसमाज सिखसम्प्रदाय, भी पवित्र हिन्दूधर्म्म की ही शाखा प्रशाखा हैं, परन्तु आज उन्हें भी हिन्दूधर्म्म की गण्डीर में रहना अभीप्सित नहीं है, आज इन को भी हिन्दू बनने वो हिन्दू कहलाने में लज्जा है। थियासोफ़िकल सोसायटी यद्यपि अभी तक प्रगटरूप में हिन्दूसमाज से पृथक् होने के लिये सचेष्ट नहीं है—परन्तु कल क्या होगा—यह भी दूरदर्शियों से छिपा हुआ नहीं है—सिखसम्प्रदाय तीन सौ वर्ष तक हिंदू ही रहा है—दिन्दूधर्म्म का एक अंग कहलाने में ही वह अपनी प्रतिष्ठा समझता था—परन्तु आज उस ने जो रूप धारण किया है—उस को समस्त भारतवर्ष अवलोकन कर रहा है। निदान धीरे धीरे एक एक संप्रदाय,

एक एक हिन्दूधर्म्मान्तर्वर्त्ती सँस्था हिन्दूसमाज से स्खलित हो रही है, और अपने को एक पृथक् समाज और एक अन्य जाति निर्धारण करने में संलग्न है, इस क्रिया का इस हृत्कम्प उपस्थित करनेवाली पद्धति का, हिन्दूधर्म्म एवम् हिन्दूसमाज के लिये कैसा भयंकर परिणाम होनेवाला है, ऐ हिन्दूजाति! इस समय तेरे लिये यही प्रधान विचारणीय विषय है। किन्तु वास्तव बात यह है कि तेरा ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है, इस विषय में तेरी ओर से अब तक बहुत कुछ उपेक्षा होती आई है, और अब भी हो रही है, परन्तु यह तेरी बहुत बड़ी निर्बलता है, प्रथम कोटि की अदूरदर्शिता है, और जो कुछ मैं ने तुझपर निर्जीवता आदि का दोषारोपण किया है, वह विशेष कर ऐसेही विषयों के लिये। यह ऐसी मारात्मक विषबटी है, कि अज्ञात में अपना कार्य्य कर रही है, और कुछ दिन में तेरे सुन्दर और निर्दोष अंग प्रत्यंग को छिन्न भिन्न एवम् नष्ट भ्रष्ट कर के रख देना चाहती है। नित्य तेरे प्रतिपालित एक दो प्राणी अल्पायास से या तो अन्यधर्म्मावम्बी हो जाते हैं, अथवा तुझ से ही प्रसूत नाना शाखा प्रशाखाओं में जाकर प्रयुक्त हो जाते हैं, और इस प्रकार तेरा निर्दोष और पवित्र अंक सदा के लिये शून्य कर जाते हैं। परंतु खेद है, और एकांत दुःख का विषय है कि तुझ को अब तक इस विषय की मर्म्मवेदना और अनुभूति नहीं है और तू इस विषय में सर्वथा निरपेक्ष और निष्क्रिय है। आज इस विषय में एक नहीं अनेक शक्तियां प्राणपण से तेरे विरुद्ध कार्य्य कर रही हैं, तेरे अज्ञात में अनेक प्रकार का दाव पेंच चल रही हैं, परन्तु तू अपने को अजर अमर अक्षय और सनातन समझ रही है, वर्या यह

हृदयविदारी किंकर्तव्यविमूढ़ता नहीं है ? अब वह समय आ गया है, जब तुझ को अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ अपने सम्पूर्ण जीवन्त उत्साहों अभूतपूर्व कार्य्यकारिणी क्षमताओं के साथ इधर प्रवृत्त होना अपेक्षित है। तेरे जितने विचार जितने धर्म्मोन्माद, जितने अपूर्व आत्मोत्सर्ग हैं, उन सब को एक सूत्र में ग्रथित कर, एक भाव द्वारा सुसज्जित बनाकर, अब इस हिन्दूधर्म्म विरोधिनी, एवम् हिन्दूजातिविद्वेषिणी, शक्ति के विरुद्ध कार्य्यकारी और उपयुक्त बनाने की आवश्यकता है। धर्म्मपालन और धर्म्मानुराग प्रदर्शन में जो अमोघशक्ति-शालिनी केन्द्रीभूत तेरी महान क्षमता है, आज उसी क्षमता को धर्म्मसंरक्षण के लिये, धर्म्म के प्रसार और वृद्धि के लिये प्रयोग करना तेरा प्रधान कर्तव्य है। हिन्दूधर्म्म की शाखा प्रशाखा स्वरूपिणी नवप्रतिष्ठित संस्थायें यदि सुविस्तृत एवम् विशाल हिन्दूसमाज से पृथक् होने में अपना मंगल समझ रहीं हैं, यदि अपने जन्मदाता, अपने आदिकारणभूत हिन्दूधर्म्म को संकटापन्न देखकर उन का हृदय क्षुब्ध नहीं होता है, वह साहाय्य करना तो दूर यदि धक्के लगाकर हिन्दूधर्म्म को गंभीर गर्त्त में निक्षिप्त कर देना ही अपना परम कर्तव्य समझती हैं, यदि वह हिन्दूसमाज के शिर पर पादाघात कर के स्वयं आकाश में उड्डीयमान होने की चेष्टा में संलग्न हैं, तो भगवान उन का मंगल करे, वह अपने प्रयत्न में लब्धकाम हों, परन्तु ऐ हिन्दूजातिं ! ऐ चिन्ता-शील, सरल, उदार, और विशेष अनुभव प्राप्त, हिन्दूजाति ! क्या तुझ को भी उन के साथ तादृश व्यवहार करना ही समुचित है ? यदि वह तुझ से उत्पन्न होकर तेरेही शरीर से पुष्ट होकर, तेरे साथ कुपुत्रवत् व्यवहार कर रही हैं, तो

क्या तू भी कुमाता होने की चेष्टा करेगी ? फिर इस वाक्य की सार्थकता कैसे होगी, "कुपुत्रोजायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"। यदि वह दुर्दैववश अपनी आधुनिक शिक्षा दीक्षा के उत्कट व्यामोहवश, केन्द्रीभूत शक्ति को ध्वंस करना एकत्रित क्षमता को उन्मूलन करना श्रेयःकल्प समझ रहे हैं, तो क्या द्वेषपरवश होकर तू भी उन के साथ तदनुकूल आचरण करना उत्तम और नीतिसंगत समझेगी। तू प्राचीनता में जगत की शीर्षस्थानीया है, बुद्धि विवेक ज्ञान में प्राणीमात्र की शिक्षयित्री है, यदि अबोध बालक अपनी अल्पज्ञतावश, अपनी हठ कारिता वश, तुझ से दुर्व्यवहार करे तो क्या तू सदय होने के स्थान पर उस से रुष्ट होगी और उचित शिक्षा देने के स्थान पर उस को नष्ट कर देना उत्तम समझेगी। यदि वह नहीं समझती हैं कि ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाने में असुविधा ही असुविधा है, खिचड़ी पक भी नहीं सकती, उस से क्षुधा भी निवारण नहीं हो सकती, खिचड़ी तभी पकेगी, क्षुधा तभी निवारण होगी, जब वह परिमित चावलों की ढेर में मिल जावेगा और उन चावलों के साथ सुपरिपक्व होने का अवसर पावेगा तो क्या तू धीर गंभीर भाव से उन को इस विषय को नहीं समझा सकती ? हिन्दूजाति तेरे कर्तव्य अब यही हैं कि जिस में हिन्दूजाति का भला हो, बिछुड़े हुए एक हों, जो अबोध हों उन को ज्ञान मिले, जो दुराग्रही हों विनय नम्र बनें, जो उच्छृंखल हैं सुशासित हों, और जिन के हृदय में अदूरदर्शिता तमिस्रारजनी का दुर्दान्तप्रभाव है, उन के हृदय में सद्विचार प्रखर किरण अंशुमाली का समुज्ज्वल प्रकाश हो। एक प्राणी किम्वा एक समाज ऐसा है, बिभेद नीति जिस

का प्रधान अवलम्बन है, जन साधारण में कलह और विद्वेषप्रचार जिस का लक्ष्य है, कटुवादिता जिस की प्रिय सहचरी है, और परहृदयपीड़न जिस का मुख्य उद्देश्य है, जो उद्धत और क्षुद्रमना है, उत्पातप्रिय और कुटिल है, एकत्रीभूत का पृथक्करण जिस के हृदय की प्यारी कामना है, और प्राचीन रीति नीति का समूलसंहार ही जिस की प्रधान इच्छा है। परन्तु दूसरा प्राणी किम्वा समाज ऐसा है, जो साम्यवादी है, धीर गंभीर है, मधुरभाषी अथच उदार है, शान्तिप्रिय अथच सहनशील है, जो दुष्टों के साथ भी शिष्टता करता है, शत्रु के साथ भी सद्व्यवहार करने में संकुचित नहीं होता। जो बिछुड़ों को मिलाता है, प्राचीन रीति नीति को आदर करता है, जो आर्त्त का त्राणदाता है, संकटापन्न का बन्धु है। तो अब विचार्य्य यह है कि इन दो विभिन्न प्रकृति के समाज किम्वा प्राणी में विजयी और सफलकाम कौन होगा? जो चिन्ताशील और विचारवान हैं, वह अवश्य यह सम्मति प्रगट करेंगे कि दूसरी प्रकृति का प्राणी किम्वा समाज ही विजयी और सफलकाम होगा, क्योंकि जो शीर्षस्थानीय और हेड है, वह अवश्य शीर्षस्थान को ग्रहण करेगा, अवश्य हेड होकर रहेगा, प्रकृति के नियम में व्याघातक भी नहीं होता। कुछ काल तक वह अनादृत रह सकता है, उस का श्रम और अध्यवसाय पण्ड हो सकता है, उस का मनोरथ और उद्देश्य विफल हो सकता है, परन्तु अंत को उसी का आदर होगा, उसी का श्रम और अध्यवसाय पूर्ण होगा, और उसी के मनोरथ और उद्देश्य में सफलता होगी। तेजःपुंजकलेवर भगवान मरीचिमाली कब तक निविड़ जलदजालसमाच्छन्न रहेंगे, अन्त को उन की

प्रभाशालिनी किरणें भूमण्डल को समुद्दीप्त अवश्य करेंगी। प्यारे सनातनधर्म्मावलम्बियों ! शान्तिप्रिय हिन्दू भाइयों ! सत्यग्रहण करो, सत्य का प्रचार करो, विचारउन्नत रक्खो, संकीर्णता का परिहार करो, प्राणी मात्र पर दया करो, हिन्दू मात्र को अपना प्राण समझो, सच्चा आत्मोत्सर्ग करो, अदम्य उत्साह से काम लो भारतवर्ष के एक एक रजकण का रत्नसमान आदर करो, एक एक वृक्षों को कल्पपादप समान फलप्रद समझो, देखो सफलता प्राप्त होती है या नहीं? विघ्नबाधा क्या हैं? असफलता वो अकृतकार्य्यता, कौन वस्तु हैं? जिन का चित्त दृढ़ है? धैर्य्य अचल अटल है? साहस असीम है? जिन में सच्चा आत्मिकबल है, सच्चा धर्म्मोन्माद है, उन के ज्योतिर्म्मय उज्जल नेत्रों के सन्मुख क्या विघ्नबाधा ठहर सकती है? क्या असफलता वा अकृतकार्य्यता मुख दिखला सकती है? एक सच्चा आत्मिकबल ही ऐसी विलक्षण शक्ति है कि यदि तुम्हारे कार्य्यपथ में विघ्न स्वरूप गर्जन करता हुआ अगाध समुद्र तरंगायमान हो तो वीर केशरी पवनपूत के समान तुम उस को भी लीलामात्र ही में उल्लंघन कर सकते हो, यदि गगनस्पर्शी बहुदूर विस्तृत कश्चित् विशाल पर्वत दण्डायमान हो तो विचित्रकर्म्मा महात्मा अगस्त के समान उस को भी क्षणमात्र में धराशायी बना सकते हो। आत्मिकबल के सन्मुख विश्वब्रह्माण्ड का कोई कार्य्य असम्भव नहीं, कोई विषय दुरूह और दुष्कर नहीं, यह तुम्हारे घर का विश्वदुर्लभ चिन्तामणि रत्न है, तुम्हारी जाति का फलप्रद स्वर्गीयकल्प-पादप है इस को विश्वमोहन मंत्र द्वारा पूत होकर सादर ग्रहण करो, देखो तुम्हारा हृदयस्थल एक स्वर्गीय विलक्षण ज्योतिः-

पुंज से परिपूर्ण हो जाता है या नहीं, और उस की अलौकिक-प्रभा से भारतवर्ष का प्रत्येक प्रान्त ही नहीं, यूरप और अमेरिका पर्य्यंत आलोकित होता है या नहीं। तुम लोगों में आज भी महाप्राणता है, तुम लोग आज भी सशक्त हो, आज भी सजीव हो, तुम लोगों की प्रत्येक शिरा में आज भी ऊष्ण रक्त प्रवाहित है, तुम लोगों के हृदय में आज भी अपूर्व स्पन्दन है, देखो सावधान हो जाओ। तुम लोगों में आज भी धर्म्मार्थ उत्सर्गाकृतजीवन महाराजाधिराज हैं, आज भी धर्म्मगतप्राणधन कुबेर वैश्य महाजन हैं, आज भी महर्षि-कल्प महात्मा हैं, आज भी बृहस्पतिसमान मनीषी हैं, आज भी सहस्रों कर्म्मवीर हैं, आज भी सैकड़ों उत्साह की जीवन्त-मूर्त्ति हैं, देखो अपनी इस अमोघ शक्ति को स्मरण करो। और अपने इन समस्त सद्गुणों को, और अपनी इन अमोघ शक्तियों को, केन्द्रीभूत करो, उन को कार्य्यकारिणी बनाओ, तुम्हारी विजय अचल अटल है, तुम्हारी सफलता विधाता की अखण्ड लिपि है, देखो समस्त भूमण्डल को शब्दायमान करके यह कैसी श्रुति मधुर देववाणी श्रवणगोचर हो रही है।

उद्यमम् साहसम् धैर्य्यम् बलम् बुद्धिम् पराक्रमम्।
षड़ेते यस्य विद्यन्ते तस्मात् देवोऽपि शंकते॥

शान्तिरस्तु।

विज्ञापन ।